हिंदी साहित्य का इतिहास

सामान्य परिचय

कक्षा 12 के लिए ऐच्छिक हिंदी की पाठ्यपुस्तक

विश्वनाथ त्रिपाठी

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण

ISBN 81-7450-207-6

जुलाई 2003

आषाढ़ 1925

PD 25T MK

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2003

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फ़ोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्लू.सी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग	हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III इस्टेज	डाकघर नवजीवन	निकट : धनकल बस स्टॉप, पनिहटी
नई दिल्ली 110 016	**बैंगलूर 560 085**	**अहमदाबाद 380 014**	**कोलकाता 700 114**

प्रकाशन सहयोग

संपादन : मीरा कांत

उत्पादन : अतुल सक्सेना

आवरण

कल्याण बैनर्जी

रु. 25.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटर मार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा इंडिया ऑफ़सेट प्रेस, ए-1, मायापुरी इंडस्ट्रियल एरिया, फ़ेस-1, रिंग रोड, नई दिल्ली 110 064 द्वारा मुद्रित।

आमुख

शिक्षा एक सतत विकासशील प्रक्रिया है। इस कारण बदलती हुई परिस्थितियों, ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले अद्यतन परिवर्तनों तथा शैक्षिक आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर नए पाठ्यक्रम और नई पाठ्यपुस्तकों के निर्माण का कार्य लगातार चलता रहता है। परिषद् ने **विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2000** तैयार की और उसके आधार पर विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रमों में संशोधन एवं परिवर्तन किए गए। नवनिर्मित पाठ्यक्रमों के अनुरूप परिषद् ने नवीन पाठ्यपुस्तकें तैयार करने का निश्चय किया। इसी क्रम में बारहवीं कक्षा में ऐच्छिक हिंदी पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक **हिंदी साहित्य का इतिहास : सामान्य परिचय** तैयार की गई है।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थी विषय का व्यवस्थित अध्ययन प्रारंभ करते हैं और उसकी गहराई से भी परिचित होते हैं। साहित्य का व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त करने के लिए साहित्य के इतिहास का अध्ययन आवश्यक है। साहित्य का इतिहास विद्यार्थियों में साहित्य-विवेक तो विकसित करता ही है, साथ ही वह उनमें एक वैज्ञानिक चेतना और ऐतिहासिक दृष्टिकोण भी पैदा करता है। साहित्य के इतिहास का प्रयोजन है साहित्य की प्रगति, परंपरा, निरंतरता और विकास की पहचान कराना।

इस स्तर के विद्यार्थी हिंदी साहित्य के क्रमिक विकास का सामान्य परिचय प्राप्त कर प्रत्येक काल के साहित्य का उसके अपने विशेष परिप्रेक्ष्य में आस्वादन कर सकें, इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर इस पुस्तक का निर्माण किया गया है। विद्वान लेखक ने हिंदी साहित्य क़ा विकास सामाजि़क, ऐतिहासिक विकास के संदर्भ में दिखलाते हुए विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों और आंदोलनों का विश्लेषण किया है। साथ ही पुस्तक की भाषा को यथासंभव सरल एवं स्पष्ट रखने का प्रयास भी किया गया है। आशा है इस पुस्तक के अध्ययन द्वारा विद्यार्थी हिंदी साहित्य के सभी कालों, विशिष्ट विधाओं और

हिंदी के प्रमुख साहित्यकारों, लेखकों के जीवन और उनकी रचनाओं का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

मैं पुस्तक के लेखक के प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। उनके द्वारा तैयार की गई पांडुलिपि को एक कार्यशाला में अंतिम रूप दिया गया जिसमें शिक्षकों और विषय-विशेषज्ञों ने भाग लिया। मैं उन सभी विद्वानों का आभारी हूँ जिनके मूल्यवान सुझाव पुस्तक निर्माण में सहायक सिद्ध हुए।

आशा है विद्यार्थियों के साहित्यिक ज्ञान के विकास की दृष्टि से यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। इसके परिष्कार के लिए सुविज्ञजनों द्वारा भेजे जाने वाले सुझावों और परामर्शों का परिषद् सदैव स्वागत करेगी।

जगमोहन सिंह राजपूत
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

मई 2003
नई दिल्ली

पांडुलिपि समीक्षा कार्यगोष्ठी के सदस्य

विश्वनाथ त्रिपाठी *
रीडर (अवकाश प्राप्त)
हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

बच्चन सिंह
प्रोफ़ेसर, (अवकाश प्राप्त)
एवं *अध्यक्ष,* हिंदी विभाग
हिमाचल विश्वविद्यालय, शिमला

निरंजन कुमार सिंह
रीडर (अवकाश प्राप्त)
सा.वि.एवं मा.शि. विभाग
एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

नित्यानंद तिवारी
प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मैनेजर पाण्डेय
प्रोफ़ेसर, एवं *अध्यक्ष*
भारतीय भाषा केंद्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

आनंद प्रकाश व्यास
रीडर (अवकाश प्राप्त)
शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

अनिरुद्ध राय
प्रोफ़ेसर, (अवकाश प्राप्त)
सा.वि.एवं मा.शि. विभाग
एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

रामकरण डबास
वरिष्ठ हिंदी प्राध्यापक
एस.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

सुरेश पंत
हिंदी प्रवक्ता (अवकाश प्राप्त)
राजकीय उच्चतर माध्यमिक बाल विद्यालय
जनकपुरी, नई दिल्ली

तान्या खुराना
उपप्राचार्या, केंद्रीय विद्यालय
केशवपुरम, लॉरेंस रोड, दिल्ली

राधिका शर्मा
वरिष्ठ हिंदी अध्यापिका
केंद्रीय विद्यालय
रंगपुरी, नई दिल्ली

मंजुरानी सिंह
वरिष्ठ हिंदी अध्यापिका
केंद्रीय विद्यालय
जे.एन.यू. परिसर, नई दिल्ली

---

* लेखक

सुरक्षा नैनवाल
वरिष्ठ हिंदी अध्यापिका
राजकीय कन्या उच्चतर माध्यमिक
विद्यालय, किदवई नगर
नई दिल्ली

अजय कुमार नौरिया
वरिष्ठ हिंदी अध्यापक
राजकीय सहशिक्षा उच्चतर माध्यमिक
विद्यालय, लाजपत नगर
नई दिल्ली

एन.सी.ई.आर.टी संकाय
सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी
शिक्षा विभाग

संध्या सिंह
रीडर

लालचंद राम
प्राध्यापक

चन्द्रा सदायत **(समन्वयक)**
रीडर

गांधी जी का जंतर

तुम्हें एक जंतर देता हूँ। जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आज़माओ :

जो सबसे गरीब और कमज़ोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुँचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानी क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा, जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

M. K. Gandhi

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51 क

मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे; और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके।

विषय सूची

आमुख : v

विषय प्रवेश : 1-3

अध्याय 1 : आदि काल ... 4-11

❑ पृष्ठभूमि...4 ❑ आदि काल का नामकरण और कालावधि...5 ❑ सिद्ध कवि...5 ❑ नाथ कवि...6 ❑ जैन मतावलंबी कवि...7 ❑ आदि काल का वीरगाथात्मक काव्य...7 ❑ आदि काल के अन्य कवि...9 ❑ आदि काल की प्रवृत्तियाँ...10

अध्याय 2 : भक्ति काल ... 12-37

❑ पृष्ठभूमि...12 ❑ भक्ति की धाराओं का परिचय...13 ❑ सूफ़ी साधना...15 ❑ निर्गुण काव्य : ज्ञानाश्रयी शाखा...16 ❑ निर्गुण ज्ञानाश्रयी काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ...21 ❑ प्रेमाश्रयी शाखा या सूफ़ी काव्य...21 ❑ निर्गुण प्रेमाश्रयी काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ...24 ❑ रामभक्ति शाखा...25 ❑ रामभक्ति काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ...29 ❑ कृष्णभक्ति शाखा...29 ❑ अन्य कृष्णभक्त कवि...34 ❑ कृष्णभक्ति काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ...36 ❑ हिंदी भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ...37

अध्याय 3 : रीति काल ... 38-53

❑ पृष्ठभूमि...38 ❑ प्रमुख रीतिबद्ध कवि...41 ❑ प्रमुख रीतिसिद्ध कवि...46 ❑ प्रमुख रीतिमुक्त कवि...47 ❑ रीति काल की सामान्य प्रवृत्तियाँ...51

अध्याय 4 : आधुनिक काल ... 54-131

❑ खड़ी बोली गद्य का विकास...54 ❑ भारतेंदु युगीन साहित्य...57 ❑ भारतेंदु युग के प्रमुख रचनाकार...59 ❑ भारतेंदु युगीन गद्य...62 ❑ भारतेंदु युगीन गद्य की प्रवृत्तियाँ...63 ❑ भारतेंदु युगीन कविता...64 ❑ द्विवेदी युग...64 ❑ निबंध...65 ❑ उपन्यास...67 ❑ कहानी...68 ❑ नाटक...69 ❑ समालोचना...69 ❑ द्विवेदी युगीन गद्य की प्रवृत्तियाँ...71 ❑ कविता...71 ❑ द्विवेदी युगीन कविता की प्रवृत्तियाँ...76 ❑ गांधी युग का साहित्य : यथार्थ और स्वप्न की अभिव्यक्ति...77 ❑ उपन्यास...78 ❑ कहानी...81 ❑ नाटक...84 ❑ समालोचना...86 ❑ निबंध...89 ❑ कविता : छायावाद...90 ❑ छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ...93 ❑ छायावादोत्तर काव्य...94 ❑ प्रगतिशील काव्य...96 ❑ प्रगतिशील काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ...98 ❑ प्रयोगवाद ...99 ❑ प्रयोगवाद की प्रवृत्तियाँ...99 ❑ स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य...100 ❑ उपन्यास...104 ❑ कहानी ...109 ❑ नाटक एवं एकांकी...113 ❑ निबंध...115 ❑ समालोचना...117 ❑ अन्य गद्य विधाएँ...121 ❑ कविता...123 ❑ साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ...129 ❑ ज्ञान का साहित्य...131

उपसंहार : 132-136

❑ प्रश्न-अभ्यास...134

विषय प्रवेश

हिंदी हमारे देश के विस्तृत भू-भाग में बोली जाती है। अपने क्षेत्र के बाहर भी वह समझी जाती है। इस पुस्तक में हम 'हिंदी' शब्द का प्रयोग हिंदी-क्षेत्र की साहित्यिक और सार्वजनिक कामकाज की भाषा के लिए करेंगे। हिंदी की अनेक बोलियाँ हैं जो इस प्रकार हैं – **पश्चिमी हिंदी** की खड़ी बोली, ब्रजभाषा, हरियाणवी, बुंदेली, कन्नौजी; **दक्षिणी हिंदी** की बघेली, छत्तीसगढ़ी; **राजस्थानी** की मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती, मालवी; **पहाड़ी क्षेत्र** की कुमाउँनी, गढ़वाली आदि और **पूर्वी हिंदी** की अवधी, भोजपुरी, मगही, मैथिली। इनमें से अनेक की स्वतंत्र साहित्यिक प्रतिष्ठा है। हिंदी क्षेत्र की इन बोलियों के व्याकरणिक ढाँचे और शब्द-भंडार में इतना सादृश्य है कि वे एक भाषा क्षेत्र के अंतर्गत मानी जाती हैं। इनमें परस्पर अंतर भी है किंतु उनको बोलने वाले एक-दूसरे को समझ लेते हैं। उनके द्वारा रचित साहित्य में भाषाई एकरूपता का ध्यान बना रहता है। इनमें से ब्रजभाषा और अवधी तो सशक्त साहित्यिक भाषा के रूप में भी प्रचलित रही हैं। आज हिंदी हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, बिहार, झारखंड एवं केंद्रशासित प्रदेश दिल्ली की प्रशासनिक भाषा है। इन राज्यों को मिलाकर जो क्षेत्र बनता है उसे हिंदी भाषी क्षेत्र कहा जाता है। हिंदी साहित्य का इतिहास लगभग 1000 वर्ष पूर्व से मिलने लगता है। यह तिथि थोड़ी पीछे भी बढ़ाई जा सकती है, लेकिन प्रश्न यह है कि हिंदी साहित्य के इतिहास के प्रारंभ को पहचानने का हमारा तर्क क्या है।

विद्वानों ने हिंदी को अपभ्रंश से भिन्न या विशिष्ट बनाने वाली तीन भाषा प्रवृत्तियों की चर्चा की है : 1. क्षतिपूरक दीर्घीकरण, जैसे प्राकृत-अपभ्रंश के कज्ज, कम्म, हत्थ जैसे शब्द हिंदी में काज, काम, हाथ बन गए; 2. परसर्गों की प्रयोग बहुलता, जैसे 'घरहिं' के स्थान पर 'घरहिं माँझ' (घर में) और 3. तत्सम शब्दों का प्रचलन।

उपर्युक्त बातों पर ध्यान देने से प्रकट हो जाता है कि पहले से चली आती हुई अपभ्रंश की धारा जब इन प्रवृत्तियों से युक्त होती गई तो हिंदी अपना रूप ग्रहण करती गई। यहाँ एक बात समझ लेना आवश्यक है कि भाषा रूप में यद्यपि अपभ्रंश की अलग सत्ता है, किंतु वह संस्कृत, पालि, प्राकृत की अपेक्षा हिंदी के व्याकरणिक ढाँचे और शब्द-भंडार के बहुत निकट है। अपभ्रंश को 'पुरानी हिंदी' इसीलिए कहा जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार अपभ्रंश रचनाएँ सदा से भाषा काव्य के अंतर्गत मानी जाती रही हैं। 1000 ई. के आस-पास ऐसा साहित्य मिलने लगता है जिसकी भाषा में ये प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास का प्रारंभ इसी कारण 1000 ई. के आस-पास माना जाता है।

हिंदी साहित्य का काल विभाजन

1000 ई. के आस-पास प्रारंभ होने वाले हिंदी साहित्य के इतिहास का विभाजन कालक्रम की दृष्टि से चार कालों – आदि, पूर्व मध्य, उत्तर मध्य और आधुनिक में किया जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कालक्रम से विभाजित इन काल-खंडों का नामकरण इस प्रकार किया – आदि काल को अपभ्रंश काव्य और देश भाषा काव्य में विभाजित करके देश भाषा काव्य को **वीरगाथा** नाम दिया। उनके अनुसार देश भाषा काव्य की वीरगाथात्मकता समूचे आदि काल की प्रधान साहित्यिक प्रवृत्ति है। इसलिए वे आदि काल को **वीरगाथा काल** कहना उचित समझते हैं। पूर्व मध्य काल को वे **भक्ति काल** और उत्तर मध्य काल को **रीति काल** कहते हैं। आधुनिक काल को वे **गद्य काल** कहना उचित समझते हैं। शुक्ल जी द्वारा किया गया हिंदी साहित्य के इतिहास का नामकरण और काल विभाजन इस प्रकार है –

आदि काल (वीरगाथा काल) संवत् 1050 से 1375 तक
पूर्व मध्य काल (भक्ति काल) संवत् 1375 से 1700 तक
उत्तर मध्य काल (रीति काल) संवत् 1700 से 1900 तक
आधुनिक काल (गद्य काल) संवत् 1900 से अब तक

शुक्ल जी का काल विभाजन तो सामान्यतः मान्य है, किंतु आदि काल और रीति काल के नामकरण के विषय में शुक्ल जी के बाद के इतिहासकारों ने भिन्न विचार प्रकट किए हैं। उनकी चर्चा हम आदि काल और रीति काल के प्रसंग में यथास्थान करेंगे।

यद्यपि हिंदी साहित्य के इतिहास का प्रारंभ 1000 ई. के आस-पास होता है, किंतु हिंदी साहित्य का इतिहास जानने के लिए हमें थोड़ा पहले 8वीं शताब्दी तक की रचनाओं का सिंहावलोकन कर लेना चाहिए, क्योंकि इस काल में रचित नाथ-सिद्धों आदि की रचनाएँ जिस भाषा में हैं, उन्हें चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने **पुरानी हिंदी** कहा है। पुरानी हिंदी से तात्पर्य परिनिष्ठित अपभ्रंश से विकसित या अपभ्रंशोत्तर भाषा से है।

अध्याय 1

आदि काल (1000-1400 ई.)

पृष्ठभूमि

आदि काल का हिंदी साहित्य राजनीतिक दृष्टि से अनेक छोटे-छोटे सामंतों में विभक्त प्रदेश का साहित्य है। हर्षवर्धन के बाद किसी ने केंद्रीय सत्ता स्थापित नहीं की। पूर्व में पाल, पश्चिम में प्रतिहार और दक्षिण में राष्ट्रकूट प्रबल थे। केवल गाहड़वार वंशीय गोविंद चंद्रदेव इस काल में मध्य देश के प्रतापी नरेश हुए। ऐसा लगता है कि राजाओं के परस्पर युद्ध या बाहरी हमलों का कोई स्थाई या परिवर्तनकारी प्रभाव सामान्य जनता पर नहीं पड़ता था। कवि आश्रयदाताओं और उनके पूर्वजों के पराक्रम, रूप एवं दान की प्रशंसा करते थे। इस काल में राजाओं पर लिखे गए काव्यों का सामान्य विषय राज्य-विस्तार तथा नारी के लिए होने वाले युद्ध हैं। सामंतवादी व्यवस्था में भूमि संपत्ति का स्रोत होती है। रक्त या वंश की शुद्धता और उच्चता में नारी की भूमिका निर्णायक होती है। इस काल में सामान्य जनता के दैनंदिन जीवन पर राज्य की अपेक्षा धार्मिक मतों का अधिक प्रभाव था। इस युग में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में भी रचनाएँ हो रही थीं। 10 वीं शती के आस-पास अपभ्रंश का प्रभाव क्रमशः क्षीण होता जा रहा था और हिंदी भाषा की प्रवृत्तियाँ उसका स्थान लेती जा रही थीं। इसी कारण हिंदी-साहित्य के आदि काल में जो साहित्य मिलता है वह अधिकांशतः अपभ्रंश-हिंदी का साहित्य है, शुद्ध अपभ्रंश या शुद्ध हिंदी का नहीं।

इस काल में आवागमन के साधन आज जैसे विकसित नहीं थे। इसका परिणाम यह दिखलाई पड़ता है कि इस विशाल क्षेत्र के विभिन्न स्थानों पर रची हुई कृतियों में भाषागत विभिन्नता अर्थात क्षेत्रीयता का रंग अधिक है। इसीलिए आदि काल का हिंदी साहित्य

अनेक बोलियों का साहित्य प्रतीत होता है। वस्तुतः यह काल अनेक दृष्टियों से संधिकाल है। धार्मिक दृष्टि से इस काल में अनेक ज्ञात-अज्ञात साधनाएँ प्रचलित थीं। सिद्ध, जैन, नाथ आदि मतों का इस काल में व्यापक प्रचार था। इनका साहित्य भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। धार्मिक साधना के रूप में वैष्णव मत का प्रचार सामान्य जनता में कम नहीं रहा होगा, किंतु इस काल में वैष्णव मतावलंबी साहित्य अपेक्षाकृत कम मिलता है। इस्लाम का प्रवेश हो चुका था, किंतु उसका प्रभाव साहित्य पर आदि काल के अंतिम चरण के प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो में ही दिखलाई पड़ता है। **संदेशरासक** का रचयिता अद्दहमाण (अब्दुर्रहमान) अपने नाम से इस्लाम धर्मावलंबी ज्ञात होता है, किंतु उसकी रचना पर इस्लाम का प्रभाव नहीं के बराबर है।

आदि काल का नामकरण और कालावधि

रामचंद्र शुक्ल ने प्रधान साहित्यिक प्रवृत्ति को किसी साहित्यिक काल-खंड के नामकरण का आधार माना था। इस आधार पर उन्होंने आदि काल को **वीरगाथा काल** कहा। इसके पूर्व ग्रियर्सन ने इसे **चारण काल** और मिश्रबंधुओं ने **प्रारंभिक काल** कहा। बाद में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने **आदि काल** तथा राहुल सांकृत्यायन ने **सिद्ध-सामंत काल** कहा। हमने प्रस्तुत पुस्तक में इसे आदि काल कहना ही उचित समझा है क्योंकि इसमें परवर्ती हिंदी साहित्य की अधिकांश प्रवृत्तियों का आदि रूप मिल जाता है।

आदि काल को 1000 ई. के कुछ पीछे सरहपा तक ले जाया जा सकता है, किंतु हिंदी साहित्य की अविरल परंपरा 1000 ई. के आस-पास हेमचंद्र के दोहों से प्रारंभ होती है। इसलिए हम उसका प्रारंभ 1000 ई. के आस-पास से मानते हैं। आदि काल की दूसरी अर्थात अंतिम सीमा पर अमीर खुसरो, विद्यापति, मुल्ला दाऊद जैसे कवि स्थित हैं। ये सभी 14वीं शताब्दी के आस-पास के ठहरते हैं। अतएव आदि काल का समय दसवीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी तक मानना उचित है।

अब हम आदि काल के प्रमुख कवियों का उल्लेख करेंगे।

सिद्ध कवि

बौद्ध धर्म कालांतर में तंत्र-मंत्र की साधना में बदल गया था। वज्रयान इसी प्रकार की साधना थी। महापंडित राहुल सांकृत्यायन के अनुसार "बौद्ध धर्म अपने हीनयान और

महायान के विकास को चरम सीमा तक पहुँचाकर अब एक नई दिशा लेने की तैयारी कर रहा था, जब उसे मंत्रयान, वज्रयान या सहजयान की संज्ञा मिलने वाली थी।" सिद्धों का संबंध इस वज्रयान से था। इनकी संख्या 84 बताई जाती है। प्रथम सिद्ध **सरहपा** (8वीं शताब्दी) सहज जीवन पर बहुत अधिक बल देते थे। इन्हें ही सहजयान का प्रवर्तक कहा जाता है। सिद्धों ने नैरात्म्य भावना, कायायोग, सहज, शून्य तथा समाधि की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं का वर्णन किया है। इन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था पर तीव्र प्रहार किया है। इन्होंने संधा भाषा-शैली में रचनाएँ की हैं। संधा भाषा वस्तुतः अंतस्साधनात्मक अनुभूतियों का संकेत करने वाली भाषा है। इसीलिए अर्थ खुलने पर ही यह समझ में आती है। इस भाषा-शैली का उपयोग नाथों ने भी किया है। कबीर आदि निर्गुण संतों की इसी भाषा-शैली को उलटबाँसी कहा जाता है। मध्य देश के पूर्वी भाग में ही सिद्धों के होने का पता चला है। इनकी भाषा में भी उन्हीं क्षेत्रों के तत्कालीन रूप मिलते हैं।

नाथ कवि

नाथों का समय थोड़ा बाद का है। चौरासी सिद्धों की जो सूची मिलती है, उसमें कई नाम नाथों के भी हैं। वज्रयानी सिद्धों के साथ नाथों का संबंध था। नाथ पंथ में **गोरखनाथ** शिव के रूप में माने जाते हैं। अतः इनका शैव होना स्पष्ट है। गोरखनाथ ने पतंजलि के योग को लेकर हठयोग का प्रवर्तन किया और ब्रह्मचर्य, वाक्संयम, शारीरिक-मानसिक शुचिता, मद्य-मांस के त्याग का आग्रह किया। ब्राह्मणों के कर्मकांड एवं वर्णाश्रम व्यवस्था पर उन्होंने भी तीव्र प्रहार किया। उनका सिद्धांत था – 'जोइ-जोइ पिंडे सोई ब्रह्मांडे' अर्थात जो शरीर में है वही ब्रह्मांड में है। इला-पिंगला, नाद-बिंदु की साधना, षट्चक्रभेदन, शून्य चक्र में कुंडलिनी का प्रवेश आदि नाथों की अंतस्साधना के मुख्य अंग हैं। संधा भाषा या उलटबाँसी की शैली का प्रयोग इन्होंने भी किया है।

परंपरा से प्रसिद्ध है कि गोरखनाथ मत्स्येंद्रनाथ या मछंदरनाथ के शिष्य थे। मछंदरनाथ जलंधर के शिष्य थे। यह भी कहा जाता है कि इन्हीं जलंधर से जालंधर नगर का नामकरण हुआ है। राहुल जी गोरखनाथ का समय विक्रम की दसवीं शताब्दी मानते हैं। शुक्ल जी ने इन्हें पृथ्वीराज चौहान के समय का बताया है और हजारी प्रसाद द्विवेदी इन्हें दसवीं शताब्दी का मानने के पक्ष में हैं।

जैन मतावलंबी कवि

जैन मत के प्रभाव में अधिकांश काव्य गुजरात, राजस्थान और दक्षिण में रचा गया है। इस साहित्य का महत्त्व इस बात में है कि यह प्रायः प्रामाणिक रूप में उपलब्ध है। जैन मतावलंबी रचनाएँ दो प्रकार की हैं – 1. जिनमें नाथ-सिद्धों की तरह अंतस्साधना, उपदेश, नीति सदाचार पर बल है और कर्मकांड का खंडन है। ये मुक्तक हैं। प्रायः दोहों में रचित हैं। 2. जिनमें पौराणिक जैन साधकों की प्रेरक जीवन कथा या लोक प्रचलित कथाओं को आधार बनाकर जैन मत का प्रचार किया गया है। जैन पौराणिक काव्य एवं चरित काव्य इसी श्रेणी के काव्य हैं।

इस काल में जो वैष्णव साहित्य लिखा गया था वह कम उपलब्ध है। लेकिन लक्ष्मीधर द्वारा 14वीं शताब्दी में संकलित **प्राकृत पैंगलम्** के अनेक छंदों में विष्णु के विभिन्न अवतारों से संबंधित पंक्तियाँ मिलती हैं। इसी प्रकार हेमचंद्र (12वीं शती) के **प्राकृत-व्याकरण** में संकलित अपभ्रंश दोहों में भी कृष्ण, राधा, दशमुख आदि की चर्चा आती है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि इस काल के साहित्य में विष्णु के विभिन्न अवतारों को लेकर प्रचुर मात्रा में रचनाएँ हुई थीं, जो अब उपलब्ध नहीं हैं।

आदि काल का वीरगाथात्मक काव्य

रामचंद्र शुक्ल ने आदि काल को वीरगाथा काल कहा है। उन्होंने इस काल की प्रधान साहित्यिक प्रवृत्ति की पहचान जिन 12 ग्रंथों के आधार पर की है, वे इस प्रकार हैं – **विजयपाल रासो, हम्मीर रासो, कीर्तिलता, कीर्तिपताका, खुमान रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, जयचंद प्रकाश, जयमयंक-जस-चंद्रिका, परमाल रासो, खुसरो की पहेलियाँ और विद्यापति-पदावली।**

इनमें से विद्यापति की रचनाएँ (14वीं, 15वीं शताब्दी) अर्थात **कीर्तिलता, कीर्तिपताका, पदावली** और नरपति नाल्ह द्वारा रचित **बीसलदेव रासो** प्रामाणिक रूप में उपलब्ध हैं। **कीर्तिपताका** अभी तक संपादित होकर प्रकाशित नहीं हुई है। **बीसलदेव रासो** का पाठ यद्यपि डॉ. माताप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित-प्रकाशित है किंतु इसके रचनाकाल के विषय में बहुत मतभेद हैं। कुछ लोग इसे 13वीं शताब्दी की रचना मानते हैं, कुछ लोग 16वीं-

17वीं शती की। जगनिक कृत **परमाल रासो** आल्हा के रूप में ही पहचाना जाता है। आल्हा लोक गान है, अतः वह विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न रूपों में गाया जाता है। जगनिक संभवतः परमाल और पृथ्वीराज के समकालीन (12वीं शती) थे। **विजयपाल रासो** के रचयिता का नाम नल्लसिंह है। इसमें जो लड़ाई विजयपाल ने पंग राजा से की थी, उसका वर्णन है। मिश्र बंधुओं ने इसका रचनाकाल 14वीं शती ही माना है। भाषा-शैली पर विचार करने से यह रचना परवर्ती लगती है। **हम्मीर रासो**, **जयचंद प्रकाश** और **जयमयंक-जस-चंद्रिका** उपलब्ध नहीं हैं। हम्मीर विषयक एक पद्य **प्राकृत पैंगलम्** में अवश्य मिलता है, जिसके बारे में शुक्ल जी का विश्वास है कि वह **हम्मीर रासो** का ही है। **खुमान रासो** के रचयिता दलपति विजय हैं। इसमें 9वीं शताब्दी के खुमान के युद्ध का वर्णन है। लेकिन मेवाड़ के परवर्ती शासकों जैसे महाराणा प्रताप सिंह और राजसिंह का भी वर्णन है। इससे प्रकट होता है कि यह रचना 17वीं शती के आस-पास की है।

पृथ्वीराज रासो या पृथ्वीराज रासउ आदि काल का सर्वाधिक प्रसिद्ध काव्य है। इस काव्य का रचनाकाल और इसका मूलरूप भी सर्वाधिक विवादास्पद है। इसके रचयिता चंदबरदाई पृथ्वीराज चौहान के अंतरंग बताए जाते हैं। प्राच्य विद्या के यूरोपीय पंडितों ने इस ग्रंथ से मध्यकालीन इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश डालने की आशा बाँध रखी थी। इसीलिए डॉ. बूलर को जब यह पता चला कि रासो की तिथियाँ, व्यक्तियों के नाम, घटनाएँ आदि इतिहास सम्मत नहीं हैं तो उन्होंने तत्काल इस ग्रंथ को न प्रकाशित करने की सिफारिश की। इसकी प्रामाणिकता पर संदेह करने वाले विद्वानों में गौरीशंकर हीराचंद ओझा, रामचंद्र शुक्ल आदि भी हैं। बाबू श्यामसुंदर दास और मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या इसे प्रामाणिक मानने वालों में हैं।

रासो में मध्यकालीन साहित्य में प्रयुक्त अनेक कथानक-रूढ़ियों और काव्य-रूढ़ियों का प्रयोग किया गया है। इसमें अनेक छंदों का प्रयोग मिलता है। इसमें चरितकाव्य, कथाकाव्य, आख्यायिका आदि के भी लक्षण मिलते हैं।

रासो में पृथ्वीराज के विभिन्न युद्धों और विवाहों का वर्णन है। वीर और शृंगार रासो के प्रमुख रस हैं, यद्यपि इसका अंगी (प्रधान) रस वीर ही माना जाएगा। रासो में नायिका का नख-शिख वर्णन, सेना के प्रयाण, युद्ध, षड्ऋतुओं आदि का सुंदर वर्णन है। चंदबरदाई अनेक मनःस्थितियों का चित्र खींचने में सिद्ध हैं। यद्यपि वे विविध छंदों के प्रयोग में कुशल हैं, किंतु छप्पय उनका अपना छंद है।

बीसलदेव रासो के रचयिता का नाम नरपति नाल्ह है। पाठ के अनुसार ग्रंथ की रचना 1155 ई. में हुई थी। किंतु श्री मोतीलाल मेनारिया के अनुसार इसकी रचना 16वीं शताब्दी में हुई होगी। **बीसलदेव रासो** में शाकंभरी नरेश बीसलदेव और भोज परमार की पुत्री राजमती के विवाह, वियोग और पुनर्मिलन का वर्णन है। यह प्रधानतः शृंगारी काव्य है। **बीसलदेव रासो** में हिंदी काव्य में प्रयुक्त होने वाला बारहमासा वर्णन सबसे पहले मिलता है।

आदि काल के अन्य कवि

विद्यापति (14वीं शती)

इनकी तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं : **कीर्तिलता, कीर्तिपताका** एवं **पदावली**। **कीर्तिलता** ऐतिहासिक महत्त्व का छोटा-सा प्रबंध काव्य है। विद्यापति ने इसे 'कहाणी' कहा है। मध्य काल में ऐतिहासिक व्यक्तियों को आधार बनाकर जो काव्य लिखे गए हैं, वे ऐतिहासिकता से रहित होकर कथानक-रूढ़ियों, किंवदंतियों, अनुश्रुतियों आदि के विषय बन गए हैं। इसी प्रकार घटनाओं को भी तोड़ा-मरोड़ा गया है। **कीर्तिलता** इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अपवाद है। उसकी ऐतिहासिकता बहुत-कुछ सुरक्षित है। इसमें विद्यापति ने कीर्तिसिंह द्वारा अपने पिता का बदला लेने का वर्णन किया है। **कीर्तिलता** को कवि ने 'अवहट्ट' भाषा में रचा है। 'अवहट्ट' देशी भाषा यानी मैथिली-युक्त विकसित अपभ्रंश है। इसके गद्य में तत्सम शब्दों का प्रयोग खुलकर हुआ है।

पदावली विद्यापति के यश का आधार है। पदावली ऐसी रचना है जो काव्योत्कर्ष और साहित्य का इतिहास – दोनों दृष्टियों से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसमें राधा-कृष्ण अपना अलौकिकत्व छोड़कर लौकिक व्यक्तियों के समान प्रेम-भावना से विह्वल होते हैं। लोक में जिस प्रकार किशोरी लोकलाज के कारण तीव्र अंतर्द्वंद्व झेलती हैं, उसी प्रकार राधा को चित्रित किया गया है। इस बात को लेकर काफी विवाद है कि **पदावली** भक्तिपरक रचना है या शृंगारपरक। वस्तुतः जयदेव का **गीत गोविंद**, विद्यापति की **पदावली** और सूरदास का **सूरसागर** एक ही कोटि की रचनाएँ हैं, जिनमें भक्ति का आधार शृंगार है।

अमीर खुसरो (14वीं शती)

खुसरो इस युग के अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति हैं। उनके काव्योत्कर्ष का प्रमाण उनकी फारसी रचनाएँ हैं। वे संगीतज्ञ, इतिहासकार, कोशकार, बहुभाषाविद्, सूफी औलिया, कवि बहुत कुछ थे। उनकी हिंदी रचनाएँ अत्यंत लोकप्रिय रही हैं। उनकी पहेलियाँ, मुकरियाँ, दो सखुने अभी तक लोगों की ज़बान पर हैं। उनके नाम से निम्नलिखित दोहा बहुत प्रसिद्ध है। कहते हैं कि यह दोहा खुसरो ने हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के देहांत पर कहा था –

गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देस।

उनकी हिंदी रचनाओं का ऐतिहासिक महत्त्व है। उनकी भाषा, हिंदी की आधुनिक काव्य भाषा के रूप में पूर्णतः प्रतिष्ठित होने का संकेत देती है। उनका व्यक्तित्व और उनकी हिंदी इस बात को प्रमाणित करती है कि हिंदी काव्य प्रारंभ से ही मध्य देश की मिली-जुली संस्कृति का चित्र रहा है। उन्होंने ऐसी पंक्तियाँ रची हैं जिनमें फारसी और हिंदी को एक ही ध्वनि प्रवाह में गुंफित कर दिया गया है। यह कला संस्कृति-साधक को ही सिद्ध हो सकती है –

जे हाल मिसकीं मकुन तग़ाफुल दुराय नैना, बनाय बतियाँ।
कि ताबे हिज्राँ न दारम ऐ जाँ न लेहु काहे लगाय छतियाँ।
शबाने हिज्राँ दराज़ चूं जुल्फ व रोज़े वसलत चूँ उम्र को तह।
सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ।

आदि काल की प्रवृत्तियाँ

- आदि काल अपभ्रंश और हिंदी का संधिकाल है। इसमें दोनों की भाषाई और साहित्यिक प्रवृत्तियों का मेल है।
- इसमें नाथ-सिद्धों और जैन कवियों का साहित्य मिलता है जिसमें वैदिक मत और कर्मकांड की आलोचना की गई है।

- वीरगाथात्मकता इस काल की प्रधान प्रवृत्ति है। यह अधिकांशतः रासो काव्य के अंतर्गत मिलती है। यद्यपि रासो काव्य में शृंगारी (संदेश रासक), जैन धार्मिक साहित्य (भरतेश्वर बाहुबलि रास) भी लिखा गया है।
- इस काल के प्रबंध काव्यों में कथानक-रूढ़ियों और काव्य-रूढ़ियों का जमकर प्रयोग किया गया है।
- मुक्तक काव्यों में अधिकांशतः अपभ्रंश छंदों का उपयोग किया गया है।
- गेय पदों की रचना इस काल का महत्त्वपूर्ण मुक्तक काव्यरूप है। इसके प्रधान कवि विद्यापति हैं।
- इस काल के अंतिम महत्त्वपूर्ण कवि विद्यापति ने अपभ्रंश और आधुनिक भाषा (मैथिली) दोनों में रचना की है।
- इस काल में थोड़ा साहित्य गद्य में भी लिखा गया है जिसकी सूचना हमें दामोदर पंडित के **उक्ति व्यक्ति प्रकरण** जैसे ग्रंथ से मिल जाती है।
- अमीर खुसरो ने दो सखुने, मुकरियाँ, पहेलियाँ जैसे लोक प्रचलित काव्यरूपों का प्रयोग किया है। उनमें फारसी, खड़ी बोली, ब्रजभाषा तीनों का प्रयोग है।

अध्याय 2

भक्ति काल (1400-1700 ई.)

पृष्ठभूमि

भक्ति आंदोलन भारतीय साहित्य के इतिहास का अत्यंत गौरवपूर्ण कालखंड है। हिंदी का भक्ति साहित्य भक्ति आंदोलन की उपज है। भक्ति आंदोलन की विशेषता यह बताई गई है कि इसमें धर्म साधना का नहीं, भावना का विषय बन गया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति को धर्म का रसात्मक रूप कहा है। हिंदी में भक्ति साहित्य की परंपरा का आरंभ महाराष्ट्र के संत नामदेव (जन्म सन 1267 ई.) की रचनाओं से माना जा सकता है। तब से लेकर लगभग तीन सौ वर्षों तक भक्ति हिंदी साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति बनी रही। इस काल ने हिंदी को कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा जैसे महान कवि दिए। इस आधार पर भक्ति काल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है।

भक्ति आंदोलन अखिल भारतीय था। इसका परिणाम यह हुआ कि लगभग पूरे देश में मध्य देश की काव्य भाषा हिंदी (ब्रजभाषा) का प्रचार-प्रसार हुआ। नामदेव यदि अपनी भाषा अर्थात मराठी में और नानक देव पंजाबी में रचना करते थे तो ब्रजभाषा में भी। 14वीं शती में दिल्ली में केंद्रीय सत्ता स्थापित होने के बाद जब सड़कें आदि बड़े पैमाने पर बनीं, व्यापार की बढ़ोतरी हुई तो देश के विभिन्न क्षेत्रों के लोगों का मिलना-जुलना भी ज़्यादा बढ़ा। इनमें सैनिक, व्यापारी, साधु-संत अधिक होते थे। इससे मध्य देश की भाषा के प्रचारित-प्रसारित होने की स्थिति हुई। भक्ति-साहित्य अखिल भारतीय है। किंतु उत्तर भारत के भक्ति साहित्य की विशेषता यह है कि इसमें मुसलमान (जायसी, रहीम, रसखान आदि) भी शामिल हुए। संभवतः भक्त कवियों की इतनी अधिक संख्या भी केवल हिंदी में है।

इस आंदोलन का ऐतिहासिक आधार क्या था? शुक्ल जी ने इसे इस्लामी आक्रमण से पराजित हिंदी जनता की असहाय एवं निराश मनःस्थिति से जोड़ा था। वे एक ओर इसे दक्षिण भारत से आया हुआ मानते थे, दूसरी ओर यह मानते थे कि अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार भक्ति आंदोलन भारतीय चिंता-धारा का स्वाभाविक विकास है। नाथ-सिद्धों की साधना, अवतारवाद, लीलावाद और जातिगत कठोरता दक्षिण भारत से आई हुई धारा में घुल-मिल गई। यह आंदोलन और साहित्य लोकोन्मुखता एवं मानवीय करुणा के महान आदर्श से युक्त है।

भक्ति आंदोलन का उदय और विकास किसी सुसंगत विचारधारा या दर्शन के बिना नहीं हो सकता था। इस दृष्टि से रामानुज और रामानंद की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। रामानुज के अनुसार जगत मिथ्या नहीं वास्तविक है। इस जगत को वास्तविक मानकर उसे महत्त्व देने में ही भक्ति की लोकोन्मुखता एवं करुणा है। जगत मिथ्या नहीं वास्तविक है, यह लौकिकता की दार्शनिक स्वीकृति है।

रामानुज की ही परंपरा में रामानंद (1400-1470 ई.) हुए जिनके बारे में कहा जाता है कि वे भक्ति को दक्षिण से उत्तर में लाए। भक्ति एक प्रवृत्ति के रूप में रामानुजाचार्य के पहले भी थी, किंतु वह साधना पद्धति मात्र थी, आंदोलन नहीं। ऐतिहासिक स्थितियों की अनुकूलता में वह प्रवृत्ति व्यापक एवं तीव्र होकर धार्मिक आंदोलन बन गई।

भक्ति की धाराओं का परिचय

भक्ति की दो धाराएँ प्रवाहित हुईं – निर्गुण धारा और सगुण धारा। निर्गुण और सगुण धारा में अंतर इस बात का नहीं है कि निर्गुणियों के राम गुणहीन हैं और सगुण मतवादियों के राम या कृष्ण गुणसहित। वस्तुतः निर्गुण का अर्थ संतों के यहाँ गुणरहित नहीं है। निर्गुण और सगुण मतवाद का अंतर अवतार एवं लीला को लेकर है। निर्गुण मत के इष्ट भी कृपालु, सहृदय, दयावान, करुणाकर हैं, वे भी मानवीय भावनाओं से युक्त हैं, किंतु वे न अवतार ग्रहण करते हैं, न लीला करते हैं। वे निराकार हैं। सगुण मत के इष्ट अवतार लेते हैं, दुष्टों का दमन करते हैं। अतः सगुण मतवाद में विष्णु के अवतारों में से अनेक की

उपासना होती है, यद्यपि सर्वाधिक लोकप्रिय और लोक पूजित अवतार राम एवं कृष्ण ही हैं।

निर्गुण एवं सगुण दोनों प्रकार की भक्ति का मुख्य लक्षण है – भगवद्विषयक रति अर्थात भगवान से अनन्य प्रेम। नाथ-सिद्धों के आसन-प्राणायाम, सहज-समाधि, शरीर, प्राण, मन, वाणी की अचंचलता का योग – सब इसी प्रेम में विलीन हो गए हैं।

भक्ति के अनेक संप्रदाय हैं। उनमें से चार प्रमुख संप्रदायों और उनके आचार्यों का परिचय संक्षेप में दिया जा रहा है। ये संप्रदाय हैं – श्री, ब्राह्म, रुद्र, सनकादि या निंबार्क।

1. **श्री संप्रदाय –** श्री संप्रदाय के आचार्य रामानुजाचार्य हैं। कहा जाता है कि लक्ष्मी ने इन्हें जिस मत का उपदेश दिया उसी के आधार पर इन्होंने अपने मत का प्रवर्तन किया। इसलिए इनके संप्रदाय को **श्री संप्रदाय** कहते हैं। इन्हीं की परंपरा में रामानंद हुए। रामानंद प्रयाग में उत्पन्न हुए थे। इनके गुरु का नाम राघवानंद था। इन्होंने अवर्ण-सवर्ण, स्त्री-पुरुष, राजा-रंक सभी को शिष्य बनाया। रामानंद के बारह शिष्य हुए – रैदास, कबीर, धन्ना, सेना, पीपा, भवानंद, सुखानंद, अनंतानंद, सुरसुरानंद, पद्मावती, सुरसुरी। रामानंद के रचनात्मक व्यक्तित्व का अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि उन्होंने हिंदी को अपने मत के प्रचार का माध्यम बनाया।
2. **ब्राह्म संप्रदाय –** ब्राह्म संप्रदाय के प्रवर्तक मध्वाचार्य थे। उनका जन्म गुजरात में हुआ था। चैतन्य महाप्रभु पहले इसी संप्रदाय में दीक्षित हुए थे। इस संप्रदाय का सीधा संबंध हिंदी साहित्य से नहीं है।
3. **रुद्र संप्रदाय** – इसके प्रवर्तक विष्णुस्वामी थे। वस्तुतः यह महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुष्टि संप्रदाय के रूप में ही हिंदी में जीवित है। जिस प्रकार रामानंद ने **राम** की उपासना पर बल दिया था, उसी प्रकार वल्लभाचार्य ने **कृष्ण** की उपासना पर। उन्होंने प्रेमलक्षणा भक्ति ग्रहण की। भगवान के अनुग्रह के भरोसे नित्यलीला में प्रवेश करना जीव का लक्ष्य माना। सूरदास एवं अष्टछाप के कवियों पर इसी संप्रदाय का प्रभाव है।
4. **सनकादि संप्रदाय –** इसके प्रवर्तक निंबार्काचार्य थे। हिंदी भक्ति साहित्य को प्रभावित करने वाले राधावल्लभी संप्रदाय का संबंध इसी से जोड़ा जाता है। राधावल्लभी संप्रदाय के प्रवर्तक गोसाईं हितहरिवंश का जन्म सन 1502 में मथुरा के

पास बाँदगाँव में हुआ। कहा जाता है हितहरिवंश पहले मध्वानुयायी थे। इस संप्रदाय में राधा की प्रधानता है।

सूफ़ी साधना

भक्ति आंदोलन इतना व्यापक एवं मानवीय था कि इसमें हिंदुओं के साथ मुसलमान भी आ जुड़े। सूफ़ी यद्यपि इस्लाम मतानुयाई हैं, किंतु अपने दर्शन एवं साधना पद्धति के कारण भक्ति आंदोलन में गणनीय हैं। इस्लाम एकेश्वरवादी है। किंतु सूफ़ी संतों ने **अनलहक** अर्थात 'मैं ब्रह्म हूँ' की घोषणा की। यह बात अद्वैतवाद से मिलती-जुलती है। सूफी साधना के अनुसार मनुष्य के चार विभाग हैं – 1. नफ़्स (इंद्रिय), 2. अक़्ल (बुद्धि या माया), 3. कल्ब (हृदय), 4. रूह (आत्मा)। यह साधना नफ़्स और अक़्ल को दबाकर कल्ब की साधना से रूह की प्राप्ति पर बल देती है। हृदय रूपी दर्पण में परम सत्ता का प्रतिबिंब आभासित होता है। यह दर्पण जितना ही निर्मल होगा, रूप उतना ही स्पष्ट होगा, अर्थात सूफ़ी साधना भी हृदय की साधना है। इसी से वह भक्ति है। आचार्य शुक्ल ने इसीलिए जायसी आदि सूफ़ी कवियों को कबीर, सूर, तुलसी की कोटि में रखा। **मुल्ला दाऊद** (1379 ई.) हिंदी के प्रथम सूफ़ी कवि हैं। सूफी कवियों की परंपरा 19वीं शती तक मिलती है।

अन्य मत

आधुनिक हिंदी क्षेत्र के बाहर पड़ने वाले दो संत कवियों – महाराष्ट्र के नामदेव (13वीं शती) और पंजाब के गुरु नानक (15वीं शती) ने हिंदी में रचना की है। अनुमानतः नामदेव पहले सगुणोपासक थे, बाद में ज्ञानदेव के प्रभाव के कारण नाथ पंथ में आए। इसी कारण नामदेव की रचनाएँ सगुणोपासना और निर्गुणोपासना दोनों से संबंधित हैं। गुरु नानक का संबंध किसी संप्रदाय से जोड़ना कठिन है। वे दृष्टिकोण में कबीर से काफी मिलते-जुलते हैं, यद्यपि उनका स्वर कबीर जैसा प्रखर नहीं बल्कि शामक है। ये सिख संप्रदाय के प्रवर्तक एवं प्रथम गुरु हैं।

इनके अतिरिक्त भी भक्ति के अनेक छोटे-छोटे संप्रदाय हैं, किंतु भक्ति का लक्षण भगवद्विषयक रति, अनन्यता, पूर्ण समर्पण सब में मिलता है। सदाचार, परदुख कातरता,

प्राणिमात्र पर करुणा, समभाव, अनावश्यक लौकिक संपत्ति के प्रति उपेक्षा, अहिंसा आदि का भाव सभी प्रकार के भक्तों में पाया जाता है। निर्भीकता भी प्रायः सभी भक्तों में पाई जाती है।

अब हम भक्ति की निर्गुण और सगुण दोनों काव्य-धाराओं तथा उनकी उपधाराओं के कवियों और उनकी रचनाओं पर विचार करेंगे।

निर्गुण काव्य : ज्ञानाश्रयी शाखा

भक्ति साहित्य की दो धाराओं – निर्गुण काव्य और सगुण काव्य का उल्लेख किया जा चुका है। इन दोनों धाराओं की दो-दो उपधाराएँ हैं। निर्गुण काव्य की इन उपधाराओं को ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा कहा जाता है। प्रेमाश्रयी काव्य ही हिंदी का सूफ़ी काव्य है। सगुण की दो उपधाराएँ हैं – राम-भक्ति शाखा और कृष्ण-भक्ति शाखा। कबीर आदि निर्गुण संतों के साहित्य को ज्ञानाश्रयी कहने का कारण यह प्रतीत होता है कि इन संतों ने **ज्ञान** पर सूफ़ियों की अपेक्षा अधिक बल दिया है। कबीर आदि के यहाँ भगवत्प्रेम पर कम बल नहीं है किंतु सूफ़ी कवि प्रेम का जितना विशद चित्रण करते हैं, कबीर आदि नहीं करते।

कबीर (1398-1518 ई.)

कबीर के जन्म और माता-पिता को लेकर बहुत विवाद है। लेकिन यह स्पष्ट है कि कबीर जुलाहा थे, क्योंकि उन्होंने अपनी कविता में खुद को अनेक बार जुलाहा कहा है।

कबीर का अपना पंथ या संप्रदाय क्या था, इसके बारे में कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। वे रामानंद के शिष्य के रूप में विख्यात हैं, किंतु उनके 'राम' रामानंद के 'राम' नहीं हैं। शेख तकी नाम के सूफ़ी संत को भी कबीर का गुरु कहा जाता है, किंतु इसकी पुष्टि नहीं होती। संभवतः कबीर ने इन सबसे सत्संग किया होगा और इन सबसे किसी-न-किसी रूप में प्रभावित भी हुए होंगे।

कबीर के काव्य पर अनेक साधनाओं का प्रभाव है। उनमें वेदांत का अद्वैत, नाथ पंथियों की अंतस्साधनात्मक रहस्य भावना, हठयोग, कुंडलिनी योग, सहज साधना, इस्लाम का एकेश्वरवाद सब कुछ मिलता है।

हठयोग की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग उन्होंने खूब किया है, साथ ही अहिंसा की भावना पर भी बल दिया है। कबीर की वाणी का संग्रह **बीजक** कहलाता है। इसके तीन भाग हैं – 1. रमैनी, 2. सबद और 3. साखी। रमैनी और सबद में गेयपद हैं, साखी दोहों में है। रमैनी और सबद ब्रजभाषा में हैं जो तत्कालीन मध्य देश की काव्य भाषा थी।

कबीर ने धार्मिक साधनाओं को आत्मसात अवश्य किया था। किंतु वे इन साधनाओं को भक्ति की भूमिका या तैयारी मात्र मानते थे। जीवन की सार्थकता वे भक्ति या भगवद् विषयक रति में ही मानते थे। यद्यपि उनके 'राम' निराकार हैं, किंतु वे मानवीय भावनाओं के आलंबन हैं। इसीलिए कबीर ने निराकार, निर्गुण राम को भी अनेक प्रकार के मानवीय संबंधों में याद किया है। वे 'भरतार' हैं, कबीर 'बहुरिया' हैं। वे कबीर की माँ हैं – 'हरिजननी मैं बालक तोरा।' वे पिता भी हैं जिनके साथ कबीर बाज़ार जाने की ज़िद करते हैं।

कबीर भक्ति के बिना सारी साधनाओं को व्यर्थ मानते हैं। इसी प्रेम एवं भक्ति के बल पर वे अपने युग के सारे मिथ्याचार, कर्मकांड, अमानवीयता, हिंसा, परपीड़ा को चुनौती देते हैं। वे बाह्य आडंबरों और पाखंड के प्रबल विरोधी थे और इस भावना को उन्होंने बार-बार अपनी कविताओं में मुखारित किया है। वे ऊँच-नीच, जात-पाँत, धर्म-संप्रदाय आदि की संकीर्णताओं का आजीवन विरोध करते रहे। उनके काव्य, उनके व्यक्तित्व और उनकी साधना में जो अक्खड़पन, निर्भीकता और दो टूकपन है वह भी इसी भक्ति के कारण। वे पूर्व साधनाओं की पारिभाषिक शब्दावली को अपनाकर भी उसमें नया अर्थ भरते हैं।

कबीर अपने अनुभव को प्रमाण मानते हैं, शास्त्र को नहीं। इस दृष्टि से वे यथार्थ-बोध के रचनाकार हैं। उनके यहाँ जो व्यंग्य की तीव्रता और धार है वह भी कथनी-करनी के अंतर को देख पाने की क्षमता के कारण। वे परंपरा द्वारा दिए गए समाधान को अस्वीकार करके नए प्रश्न पूछते हैं– 'चलन चलन सब लोग कहत हैं, न जानों बैकुंठ कहाँ है?' या 'न जाने तेरा साहब कैसा है?'

परंपरा पर संदेह, यथार्थ-बोध, व्यंग्य, काल-बोध की तीव्रता और गहरी मानवीय करुणा के कारण कबीर आधुनिक भाव-बोध के बहुत निकट लगते हैं। किंतु कबीर में रहस्य भावना भी है और राम में अनन्य भक्ति तो उनकी मूल भाव-भूमि ही है।

नाद, बिंदु, कुंडलिनी, षड्चक्रभेदन आदि का बारंबार वर्णन कबीर के काव्य का रहस्यवादी पक्ष है। कबीर में स्वाभाविक रहस्य भावना बहुत मार्मिक रूप से व्यक्त हुई है। ऐसे अवसरों पर वे प्रायः जिज्ञासु होते हैं –

कहो भइया अंबर कासौ लागा।

कबीर तथा अन्य निर्गुण संतों की उलटबाँसियाँ प्रसिद्ध हैं। उलटबाँसियों का पूर्व रूप हमें सिद्धों की 'संधा भाषा' में मिलता है। उलटबाँसियाँ अनुभूतियों को असामान्य प्रतीकों में प्रकट करती हैं। वे वर्णाश्रम व्यवस्था को मानने वाले संस्कारों को धक्का देती हैं। इन प्रतीकों का अर्थ खुलने पर ही उलटबाँसियाँ समझ में आती हैं।

रैदास (1388-1518 ई.)

रैदास रामानंद के शिष्य कहे जाते हैं। उन्होंने अपने पदों में कबीर और सेन का उल्लेख किया है। अनुमानतः 15वीं शती उनका समय रहा होगा। धन्ना और मीराबाई ने रैदास का उल्लेख आदरपूर्वक किया है। यह भी कहा जाता है कि मीराबाई रैदास की शिष्या थीं। रैदास ने अपने को एकाधिक स्थलों पर चमार जाति का कहा है – 'कह रैदास खलास चमारा' या 'ऐसी मेरी जाति विख्यात चमारा'।

रैदास काशी के थे। रैदास के पद **गुरुग्रंथ साहब** में संकलित हैं। कुछ फुटकल पद **सतबानी** में हैं।

रैदास की भक्ति का ढाँचा निर्गुणवादियों का ही है, किंतु उनका स्वर कबीर जैसा आक्रामक नहीं। रैदास की कविता की विशेषता उनकी निरीहता है। वे अनन्यता पर बल देते हैं। रैदास में निरीहता के साथ-साथ कुंठाहीनता का भाव द्रष्टव्य है। भक्ति भावना ने उनमें वह बल भर दिया था जिसके आधार पर वे डंके की चोट पर घोषित कर सके–

जाके कुटुंब सब ढोर ढोवंत
फिरहिं अजहुँ बानारसी आस-पासा।
आचार सहित बिप्र करहिं डंड उति
तिन तनै रविदास दासानुदासा।

रैदास की भाषा सरल, प्रवाहमयी और गेय है।

गुरु नानक (1469-1538 ई.)

गुरु नानक का जन्म तलवंडी ग्राम, ज़िला लाहौर में हुआ था। इनके पिता का नाम कालूचंद खत्री और माँ का नाम तृप्ता था। इनकी पत्नी का नाम सुलक्षणी था। कहते हैं कि इनके पिता ने इन्हें व्यवसाय में लगाने का बहुत उद्यम किया, किंतु इनका मन भक्ति की ओर अधिकाधिक झुकता गया। इन्होंने हिंदू-मुसलमान दोनों की समान धार्मिक उपासना पर बल दिया। वर्णाश्रम व्यवस्था और कर्मकांड का विरोध करके निर्गुण ब्रह्म की भक्ति का प्रचार किया। गुरु नानक ने व्यापक देशाटन किया और मक्का-मदीना तक की यात्रा की। कहते हैं कि मुगल-सम्राट बाबर से भी इनकी भेंट हुई थी। यात्रा के दौरान इनके साथी और शिष्य रागी नामक मुस्लिम थे जो इनके द्वारा रचित पदों को गाते थे। गुरु नानक ने पंजाबी के साथ हिंदी में भी कविताएँ कीं। इनकी हिंदी में ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों का मेल है। भक्ति और विनय के पद बहुत मार्मिक हैं। उदारता और सहनशीलता इनके व्यक्तित्व और रचना की विशेषता है। इनके दोहों में जीवन के अनुभव उसी प्रकार गुँथे हैं जैसे कबीर की रचनाओं में। आदि **गुरुग्रंथ साहब** के अंतर्गत 'महला' नामक प्रकरण में इनकी बानी संकलित है। उसमें सबद, सलोक मिलते हैं। गुरु नानक की रचनाएँ हैं – **जपुजी, आसादीवार, रहिरास और सोहिला**। गुरु नानक की परंपरा में उनके उत्तराधिकारी गुरु कवि हुए। इनमें गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुन, गुरु तेगबहादुर और दसवें गुरु गोविंद सिंह के नाम उल्लेखनीय हैं।

दादूदयाल (1544-1603 ई.)

दादू की कविता जन सामान्य को ध्यान में रखकर लिखी गई है, अतएव सरल एवं सहज है। दादू भी कबीर के समान अनुभव को ही प्रमाण मानते थे। दादू की रचनाओं में भगवान के प्रति प्रेम और व्याकुलता का भाव है। कबीर की भाँति उन्होंने भी निर्गुण निराकार भगवान को वैयक्तिक भावनाओं का विषय बनाया है। उनकी रचनाओं में इस्लामी साधना के शब्दों का प्रयोग खुलकर हुआ है। उनकी भाषा पश्चिमी राजस्थानी से प्रभावित हिंदी है। उसमें अरबी-फारसी के काफी शब्द आए हैं, फिर भी वह सहज और सुगम है।

सुंदरदास (1596-1689 ई.)

सुंदरदास 6 वर्ष की आयु में दादू के शिष्य हो गए थे। उनका जन्म जयपुर के निकट द्यौसा नामक स्थान पर हुआ था। दादू की मृत्यु के बाद एक संत जगजीवन के साथ वे 10 वर्ष की आयु में काशी चले आए। वहाँ 30 वर्ष की आयु तक उन्होंने गहन अध्ययन किया। काशी से लौटकर वे राजस्थान में शेखावटी के निकट फतेहपुर नामक स्थान पर गए। वे फारसी भी बहुत अच्छी जानते थे। उनका देहांत सांगानेर में हुआ।

निर्गुण संत कवियों में सुंदरदास सर्वाधिक शास्त्रज्ञ एवं सुशिक्षित थे। कहते हैं कि वे अपने नाम के अनुरूप अत्यंत सुंदर थे। सुशिक्षित होने के कारण उनकी कविता में कलात्मकता है और भाषा परिमार्जित है। निर्गुण संतों ने प्राय: गेयपद और दोहे ही लिखे हैं। सुंदरदास ने कवित्त और सवैये भी रचे हैं। उनकी काव्यभाषा में अलंकारों का प्रयोग खूब है। उनका सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रंथ **सुंदरविलास** है। काव्य-कला में शिक्षित होने के कारण उनकी रचनाएँ निर्गुण साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती हैं। निर्गुण साधना और भक्ति के अतिरिक्त उन्होंने सामाजिक व्यवहार, लोकनीति और भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के आचार-व्यवहार पर भी उक्तियाँ कही हैं। लोक धर्म और लोक मर्यादा की उन्होंने अपने काव्य में उपेक्षा नहीं की है।

रज्जब (1567-1689 ई.)

रज्जब दादू के शिष्य थे। ये भी राजस्थान के थे। इनकी कविताएँ साफ और सहज हैं। भाषा पर राजस्थानी प्रभाव अधिक है और इस्लामी साधना के शब्द भी हैं।

निर्गुण संतों की ज्ञानाश्रयी शाखा के अन्य प्रसिद्ध संत कवि **मलूकदास, अक्षर अनन्य, जंभनाथ, सिंगा जी** और **हरिदास निरंजनी** हैं। **दयाबाई** और **सहजोबाई** जैसी

संत कवयित्रियाँ तथा कबीर के शिष्य **धर्मदास** की गणना इसी परंपरा में होती है। इनमें धर्मदास की रचनाओं का संतों में बहुत आदर है। इनकी कविताएँ सरल और प्रेम प्रधान हैं।

निर्गुण ज्ञानाश्रयी काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ

- इन कवियों पर नाथ-सिद्धों की बानियों, हठयोग, अंतस्साधना का प्रभाव है। इनकी कविता पर नाथ-सिद्धों की पारिभाषिक शब्दावली का भी प्रभाव है।
- इन कवियों ने प्रबंध काव्य में रचना न करके मुक्तक का ही उपयोग किया है।
- इन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था, कर्मकांड पर तीव्र प्रहार किया है। हिंदू और मुसलमान दोनों की संकीर्णताओं पर खुलकर आक्रमण किया है और मनुष्य मात्र की मूलभूत एकता पर बल दिया है।
- इनकी साधना और कविता में गुरु का महत्त्व विशेष रूप से बताया गया है।
- इन पर अपने समय के प्रायः सभी धार्मिक विचारों एवं साधनाओं – जैसे अद्वैतवाद, नाथ-सिद्ध साधना, इस्लाम, सहज मार्ग, वैष्णव मार्ग, सूफ़ी भक्ति आदि का प्रभाव है ।
- समकालीन साधनाओं का प्रभाव ग्रहण करते हुए भी निर्गुण संत मूलतः भक्त हैं।
- इनकी कविता में भाषा के लोक प्रचलित रूप का अधिकाधिक प्रयोग किया गया है।
- कबीर जैसे निर्गुण संत कवियों के यहाँ व्यंग्य का उत्कृष्ट रूप दिखाई पड़ता है।
- इन कवियों ने लोक प्रचलित काव्य-रूपों का प्रयोग किया है।

प्रेमाश्रयी शाखा या सूफ़ी काव्य

ऐतिहासिक या कल्पित व्यक्तियों के साथ किसी राजकुमारी, सेठ की पुत्री, गणिका या अप्सरा की प्रेम कथा की परंपरा प्राचीन है। कालिदास ने **मेघदूत** में लोक प्रचलित कथाओं को कहने वालों का उल्लेख किया है। 16वीं शती के बनारसीदास ने **अर्ध-कथानक** में लिखा है कि वे **मधुमालती, मिरगावत** पढ़ते थे। एक ही कहानी को आधार बनाकर मध्य काल में अनेक रचनाकारों ने काव्य लिखे हैं। जायसी ने यह लिखा है – 'आदि अंत जस कथा रही' या 'पुनि हम खोलि अरथ सब कहा'। इससे यही स्पष्ट

होता है कि ये कथाएँ पहले से शुद्ध लौकिक प्रेम कथाओं के रूप में प्रचलित थीं। सूफ़ी कवियों ने उन्हें ढाँचे में बाँधा। सूफ़ी काव्य परंपरा के पहले कवि मुल्ला दाऊद हैं। इनकी रचना का नाम **चंदायन** है। **चंदायन** का रचनाकाल 1379 ई. है –

बरिस सात सै होइ इक्यासी। तिन्हि जाह कबि सरसेउ भासी।

मुल्ला दाऊद रायबरेली ज़िले में डलमऊ के थे। वहीं उन्होंने **चंदायन** की रचना की। यह काव्य बहुत लोकप्रिय एवं सम्मानित था। दिल्ली में मख्दमू शेख तकीउद्दीन रब्बानी जन-समाज के बीच इसका पाठ किया करते थे। **चंदायन** पूर्वी भारत में प्रचलित लोरिक, उसकी पत्नी मैना और उसकी विवाहिता प्रेमिका चंदा की प्रेम कथा पर आधारित है। बीच-बीच में चंदा को इस काव्य में भी **पद्मावत** की भाँति अलौकिक सत्ता का प्रतीक बनाया गया है। **चंदायन** की भाषा अवधी है।

कुतुबन

कुतुबन ने **मिरगावत** की रचना 1503-04 ई. में की थी। ये सोहरावर्दी पंथ के ज्ञात होते हैं। रामचंद्र शुक्ल के अनुसार ये जौनपुर के बादशाह हुसैन शाह के आश्रित थे। इसमें नायक मृगी रूपी नायिका पर मोहित हो जाता है और उसकी खोज में निकल पड़ता है। अंत में शिकार खेलते समय सिंह द्वारा मारा जाता है। यह रचना अनेक कथानक-रूढ़ियों से युक्त है। भाषा प्रवाहमयी है।

मलिक मुहम्मद जायसी (1492-1542 ई.)

हिंदी में सूफ़ी काव्य-परंपरा के श्रेष्ठ कवि मलिक मुहम्मद हैं। ये अमेठी के निकट जायस के रहने वाले थे, इसलिए इन्हें जायसी कहा जाता है। जायसी अपने समय के सिद्ध फकीरों में गिने जाते थे। अमेठी के राजघराने में इनका बहुत मान था। इनकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं – **अखरावट, आखिरी कलाम** और **पद्मावत**। कहते हैं कि एक नवोपलब्ध काव्य **कन्हावत** भी इनकी रचना है, किंतु **कन्हावत** का पाठ प्रामाणिक नहीं लगता। **अखरावट** में देवनागरी वर्णमाला के एक-एक अक्षर को लेकर रचना की गई है। **आखिरी कलाम** में कयामत का वर्णन है। कवि के यश का आधार है **पद्मावत**। इसकी रचना कवि ने 1520 ई. के आस-पास की थी।

पद्मावत प्रेम की पीर की व्यंजना करने वाला विशद प्रबंध काव्य है। यह दोहा-चौपाई में निबद्ध मसनवी शैली में लिखा गया है। **पद्मावत** की काव्य-भूमिका विशद

एवं उदात्त है। कवि ने प्रारंभ में ही प्रकट कर दिया है कि जीवन और जगत को देखने वाली उसकी दृष्टि व्यापक और परस्पर विरोध को आँकने वाली है। कवि अल्लाह को इस विविधतामय सृष्टि का कर्ता कहता है –

कीन्हेसि नाग मुखहिं विष बसा। कीन्हेसि मंत्र हरह जेहिं डसा।
कीन्हेसि अमिअ जिअन जेहि पाएँ। कीन्हेसि विष जो मीचु तेहि खाएँ।
कीन्हेसि अखि मीठि रस भरी। कीन्हेसि करइ बेलि बहु फरी।

उपर्युक्त पंक्तियों में जायसी वस्तुओं का परस्पर-विरोध देख-दिखा रहे हैं। उनकी दृष्टि सामाजिक विषमता की ओर भी जाती है –

कीन्हेसि कोइ भिखारि कोइ धनी। कीन्हेसि संपति बिपति पुन धनी।
काहू भोग भुगुति सुख सारा। कहा काहू भूख भवन दुख भारा।

जायसी इन सबको अल्लाह का ही किया हुआ मानते थे।

पद्मावत की कथा चित्तौड़ के शासक रतनसेन और सिंहल देश की राजकन्या पद्मिनी की प्रेम कहानी पर आधारित है। इसमें कवि ने कौशलपूर्वक कल्पना एवं ऐतिहासिकता का मिश्रण कर दिया है। इसमें अलाउद्दीन खिलजी द्वारा चित्तौड़ पर आक्रमण और विजय ऐतिहासिक घटना है। रतनसेन अपनी विवाहिता पत्नी नागमती को छोड़कर पद्मिनी की खोज में योगी होकर निकल पड़ता है। पद्मिनी से उसका विवाह होता है। राघवचेतन नामक पंडित पद्मिनी के रूप की प्रशंसा अलाउद्दीन से करता है। अलाउद्दीन छल से रतनसेन को पकड़कर दिल्ली ले जाता है। गोरा-बादल वीरतापूर्वक रतनसेन को छुड़ा लेते हैं। बाद में रतनसेन एक अन्य राजा देवपाल से लड़ाई में मारा जाता है। पद्मिनी और नागमती राजा के शव को लेकर सती हो जाती हैं। अलाउद्दीन जब चित्तौड़ पहुँचता है तो उसे उसकी राख मिलती है।

जायसी ने इस प्रेम कथा को आधिकारिक एवं आनुषंगिक कथाओं के ताने-बाने में बहुत जतन से बाँधा है। **पद्मावत** आद्यंत 'मानुष-प्रेम' अर्थात मानवीय प्रेम की महिमा व्यंजित करता है। हीरामन शुक शुरू में कहता है –

मानुस प्रेम भएउँ बैंकुठी। नाहिं त काह छार भरि मूठी।

रचना के अंत में छार भरि मूठि फिर आती है। अलाउद्दीन पद्मिनी के सती होने के बाद चित्तौड़ पहुँचता है तो यह राख ही मिलती है –

छार उठाइ लीन्हि एक मूठी। दीन्हि उड़ाइ पिरिथमी झूठी।

कवि ने कौशल से यह मार्मिक व्यंजना की है कि जो पद्मिनी रतनसेन के लिए 'पारस रूप' है वही अलाउद्दीन जैसे के लिए मुट्ठी भर धूल। मध्यकालीन रोमांचक आख्यानों का कथानक प्रायः बिखर जाता है, किंतु **पद्मावत** का कथानक सुगठित है।

पद्मावत विशुद्ध अवधी में रचित काव्य है। इसमें **रामचरितमानस** की भाँति अनेक क्षेत्रों की भाषाओं का मेल नहीं है। इसलिए विशुद्ध अवधी का जो सहज और चलता रूप **पद्मावत** में मिलता है, **मानस** में नहीं। इसमें तत्सम शब्दों का प्रयोग भी बहुत कम या नहीं के बराबर है। जायसी का प्रिय अलंकार हेतूत्प्रेक्षा है; जैसे –

पिउ सो कहहु संदेसड़ा, हे भौंरा हे काग!
सो धनि बिरहे जरि मुई, तेहिक धुआँ हम लाग।।

मंझन (16वीं शताब्दी)

मंझन ने 1545 ई. में **मधुमालती** की रचना की। **मधुमालती** में नायक को अप्सराएँ उड़ाकर मधुमालती की चित्रसारी में भेज देती हैं और वहीं नायक नायिका को देखता है। इसमें मनोहर और मधुमालती की प्रेम कथा के समानांतर प्रेमा और ताराचंद की प्रेम कथा चलती है। इसमें प्रेम का बहुत ऊँचा आदर्श सामने रखा गया है। सूफ़ी काव्यों में नायक की प्रायः दो पत्नियाँ होती हैं, किंतु इसमें मनोहर प्रेमा से बहन का संबंध स्थापित करता है।

इनके अतिरिक्त सूफ़ी काव्य परंपरा के अन्य उल्लेखनीय कवि और काव्य इस प्रकार हैं – उसमान ने 1613 ई. में **चित्रावली** की रचना की। शेख नबी ने 1619 ई. में **ज्ञानदीप** नामक काव्य लिखा। कासिम शाह ने 1731 ई. में **हंस जवाहिर** रचा। नूरमुहम्मद ने 1744 ई. मे **इंद्रावती** और 1764 ई. में **अनुराग बाँसुरी** लिखी। **अनुराग बाँसुरी** में शरीर, जीवात्मा और मनोवृत्तियों को लेकर रूपक बाँधा गया है। इन्होंने चौपाइयों के बीच में दोहे न रखकर बरवै रखे हैं।

निर्गुण प्रेमाश्रयी काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ

- सूफ़ी प्रेमाश्रयी शाखा का काव्य प्रेम की पीर की व्यंजना का काव्य है। यहाँ प्रेमिका परम सत्ता की प्रतीक है और प्रेमी साधक का।

- इस धारा में रचित काव्य प्रतीकात्मक है। मतलब यह है कि कथा लोक के साथ अध्यात्म की भी व्यंजना करती है।
- प्रेमाश्रयी सूफ़ी काव्य प्रबंधात्मक है, मुक्तक नहीं।
- इस काव्य के प्रायः सभी रचयिता मुसलमान हैं।
- इनकी भाषा अवधी है। इन्होंने मसनवी शैली का प्रयोग किया है। काव्य के प्रारंभ में अल्लाह, हज़रत मुहम्मद, उनके चार मित्रों, शाहवक्त की वंदना की गई है और कथा का विभाजन सर्गों में न होकर घटनाओं पर आधारित शीर्षकों में किया गया है।
- यह काव्य दोहा, चौपाई में निबद्ध है।
- इन काव्यों में विरह वर्णन और नख-शिख वर्णन उत्कृष्ट कोटि का है।
- इन कवियों ने भारतीय लोक जीवन में प्रचलित कहानियों को अपनी रचनाओं का आधार बनाया है।

रामभक्ति शाखा

राम की भक्ति निर्गुण और सगुण दोनों धाराओं के भक्त करते रहे हैं। राम नाम की उपासना कबीर और तुलसी दोनों करते हैं। अंतर 'राम' के अर्थ को लेकर है। कबीर के राम दशरथ सुत नहीं, किंतु तुलसी के राम दशरथ सुत हैं। हिंदी क्षेत्र के रामभक्त कवियों का संबंध रामानंद से है। रामानंद राघवानंद के शिष्य एवं रामानुजाचार्य की परंपरा के आचार्य थे। वे अत्यंत उदारमना गुरु थे। सभी वर्णों के लोग उनके शिष्य हो सकते थे। हिंदी के निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार के संत कवियों का संबंध उनसे जुड़ता है। उनके नाम से अनेक स्फुट रचनाएँ प्रचलित हैं। किंतु उनका कोई काव्य ग्रंथ नहीं मिलता। रामानंद के शिष्यों की सूची '**भक्तमाल**' में इस प्रकार दी हुई है –

अनंतानंद कबीर सुखा सुरसुरा पद्मावति नरहरि
पीपा भावानंद रैदास धना सेन सुरसुर की घरहरि।

'सुरसुर की घरहरि' अर्थात सुरसुरानंद की घरवाली। रामानंद ने सुरसुरानंद की पत्नी को भी दीक्षा दी। ऐसे ही उदारमना माननीय महान गुरु को कबीर अपना गुरु बना सकते थे।

रामानंद के शिष्य अनंतानंद थे। इनके शिष्य कृष्णदास पयहारी हुए जिन्होंने जयपुर के निकट गलता नामक स्थान पर रामानंद संप्रदाय की गद्दी स्थापित की। रामानंद और उनके शिष्यों द्वारा प्रचारित रामभक्ति के ही वातावरण में राम कथा के श्रेष्ठ हिंदी रचयिता तुलसीदास का आविर्भाव हुआ।

हम यह बता चुके हैं कि तुलसीदास ने **रामचरितमानस** का काव्य-रूपात्मक ढाँचा जायसी से लिया।

तुलसीदास के पूर्व **सत्यवती कथा** जैसी लोक प्रचलित कथाएँ चौपाई दोहे में ही हैं। कुछ पौराणिक एवं रामकथा पर आधारित रचनाएँ भी जायसी के पूर्व रचित मिलती हैं। यह बात भी महत्त्वपूर्ण समझी जानी चाहिए कि ये भी अवधी में हैं।

तुलसीदास (1532-1623 ई.)

तुलसीदास मध्यकाल के उन श्रेष्ठ कवियों में से हैं जिनकी लोकप्रियता आज भी बनी हुई है।

तुलसी का बचपन घोर दरिद्रता एवं असहायावस्था में बीता था। उन्होंने लिखा है कि माता-पिता ने दुनिया में पैदा करके मुझे त्याग दिया। विधाता ने भी मेरे भाल (भाग्य) में कोई भलाई नहीं लिखी –

मातु पिता जग जाई तज्यो, विधि हू न लिखी कछु भाल भलाई।

जैसे कुटिल कीट को पैदा करके छोड़ देते हैं वैसे ही मेरे माँ-बाप ने मुझे त्याग दिया –

तनु जन्यों कुटिल कीट ज्यों तज्यों माता पिता हूँ।

उनके जन्म स्थान के विषय में काफी विवाद है। किंतु अधिकतर विद्वान राजापुर को ही उनका जन्म स्थान मानते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 12 ग्रंथ प्रामाणिक माने जाते हैं, – **दोहावली, कवित्त रामायण (कवितावली), गीतावली, रामचरितमानस, रामाज्ञाप्रश्न, विनयपत्रिका, रामललानहछू, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपिनी, श्रीकृष्णगीतावली।** रामचरितमानस तुलसी की प्रसिद्धि का सबसे बड़ा आधार है। इस की रचना गोसाईं जी ने 1574 ई. में प्रारंभ की जैसा कि उनकी इस अर्धाली से प्रकट है –

संवत सोरह सौ इकतीसा। करउँ कथा हरिपद धरि सीसा।

गोस्वामी तुलसीदास हिंदी के अत्यंत लोकप्रिय कवि हैं। उन्हें हिंदी का जातीय कवि कहा जाता है। उन्होंने मध्य काल में प्रचलित दोनों काव्य भाषाओं – ब्रजभाषा और अवधी में समान अधिकार से रचना की है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने मध्य काल में व्यवहृत प्रायः सभी काव्यरूपों का उपयोग किया है। केवल तुलसीदास की ही रचनाओं को देखकर समझा जा सकता है कि मध्य कालीन हिंदी साहित्य में किन काव्यरूपों में रचनाएँ होती थीं। उन्होंने वीरगाथा काव्य की छप्पय-पद्धति, विद्यापति और सूरदास की गीत-पद्धति, गंग आदि कवियों की कवित्त-सवैया पद्धति, रहीम के समान दोहे और बरवै, जायसी की तरह चौपाई-दोहे के क्रम से प्रबंध काव्य रचे। रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में "हिंदी काव्य की सब प्रकार की रचनाशैली के ऊपर गोस्वामी जी ने अपना ऊँचा आसन प्रतिष्ठित किया है। यह उच्चता और किसी को प्राप्त नहीं।"

तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में काव्य के लोकमंगलकारी पक्ष पर अधिक बल दिया है। इसी दृष्टि से उन्होंने तत्कालीन सामंतों की लोलुपता पर प्रहार किया है। प्रजा-द्रोही शासक तुलसी की रचनाओं में प्रायः उनके कोप भाजन बनते हैं। उन्होंने अकाल, महामारी के साथ-साथ प्रजा से अधिक कर वसूलने की भी निंदा की। अपने समय की विभिन्न धार्मिक साधनाओं के पाखंड का उद्घाटन किया। तुलसी की दृष्टि में जो बुरा है, वह कलिकाल का प्रभाव है। यहाँ तक कि यदि लोग वर्णाश्रम धर्म का पालन नहीं कर रहे हैं तो वह भी कलिकाल का प्रभाव है। वे दैहिक, दैविक, भौतिक तापों से रहित सर्वसुखद रामराज्य का स्वप्न बुनते हैं। रामराज्य तुलसी की आदर्श व्यवस्था है। इसके नायक एवं व्यवस्थापक तुलसी के राम हैं।

प्रबंधकार कवि के लिए कथा के उचित अवयवों में अनुपात की जो आवश्यकता पड़ती है, वह तुलसी में प्रचुर मात्रा में थी। कथा में कौन-सा प्रसंग कितनी दूर तक चलना चाहिए, इसकी उन्हें सच्ची पहचान थी। इसके साथ उन्हें कथा के मार्मिक स्थलों की भी पहचान थी। **रामचरितमानस** या अन्य काव्यों में उन्होंने अधिक विस्तार उन्हीं अंशों को दिया है जो मार्मिक हैं, अर्थात जिनमें मनुष्य का मन देर तक रम सकता है, जैसे – पुष्पवाटिका प्रसंग, राम-वन-गमन, दशरथ-मरण, भरत की ग्लानि, वन-मार्ग, लक्ष्मण शक्ति।

किस स्थिति में पड़ा हुआ पात्र कैसी चेष्टा करेगा – इसे जानने और चित्रित करने में तुलसी अद्वितीय हैं। वे मानव मन के परम कुशल चितेरे हैं। चित्रकूट में राम और भरत-

मिलन के अवसर पर जो सभा जुड़ती है उसमें राम, भरत, जनक, विश्वामित्र आदि के वक्तव्य मध्य कालीन शालीनता एवं वाक्-विदग्धता का आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

तुलसीदास जिस प्रकार ब्रजभाषा और अवधी दोनों भाषाओं पर समान अधिकार रखते हैं उसी प्रकार प्रबंध और मुक्तक दोनों की रचना में भी कुशल हैं। वस्तुतः तुलसी ने **गीतावली, कवितावली** आदि में मुक्तकों में कथा कही है। यह विरोधाभास इसलिए संभव हुआ, क्योंकि इन मुक्तकों को एक साथ पढ़िए तो प्रबंध का और अलग-अलग पढ़िए तो वे स्वतंत्र मुक्तकों का आनंद देते हैं। इनमें **विनयपत्रिका** की स्थिति विशिष्ट है।

तुलसी की रचनाओं से जहाँ एक ओर रामभक्ति शाखा की अभूतपूर्व श्रीवृद्धि हुई, वहीं दूसरी ओर यह भी हुआ कि रामभक्ति शाखा के साहित्य में होने वाले परवर्ती कवि उनके आगे धूमिल पड़ गए। इस प्रकार तुलसी परवर्ती सगुण रामभक्त कवियों का ऐतिहासिक महत्त्व अधिक है, साहित्यिक महत्त्व अपेक्षाकृत कम।

नाभादास (16वीं शताब्दी)

रामानंद के शिष्यों में से एक अनंतानंद थे। उनके शिष्य कृष्णदास पयहारी थे। ये 1575 ई. के आस-पास वर्तमान थे। उनकी चार रचनाओं का पता चला है। उन्हीं कृष्णदास पयहारी के शिष्य प्रसिद्ध भक्त नाभादास थे। नाभादास की रचना **भक्तमाल** का हिंदी साहित्य में ऐतिहासिक महत्त्व है। इसकी रचना नाभादास ने 1585 ई. के आस-पास की। इसकी टीका प्रियादास ने 1712 ई. में लिखी। इसमें 200 भक्तों के चरित 316 छप्पयों में वर्णित हैं। इसका उद्देश्य तो जनता में भक्ति का प्रचार था, किंतु आधुनिक इतिहासकारों के लिए यह हिंदी साहित्य के इतिहास का महत्त्वपूर्ण आधार-ग्रंथ सिद्ध हुआ है। इस ग्रंथ से रामानंद, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा आदि के विषय में अनेक तथ्यों का भी पता चल जाता है। सबसे बड़ी बात यह है कि इससे पता तो अचूक तौर पर लग ही जाता है कि वर्णित भक्तों एवं भक्त-कवियों की छवि जन सामान्य में कैसी थी और जिस समाज में भक्तों, कवियों, महापुरुषों के जीवन वृत्त के विषय में इतना कम ज्ञात हो, उसमें इतना पता लग जाना भी बहुत काम की बात है।

रामभक्ति शाखा के कुछ अन्य उल्लेखनीय कवि प्राणनंद चौहान (17वीं शती) एवं हृदय राम (17वीं शती) हैं। प्राणनंद चौहान ने सन 1610 में **रामायण** महानाटक लिखा। हृदयराम ने 1613 ई. में **भाषा हनुमान्नाटक** लिखा।

रामचंद्रिका को ध्यान में रखें तो केशवदास रामभक्ति शाखा के कवि ठहरते हैं, यद्यपि साहित्य के इतिहास की दृष्टि से केशवदास का अधिक महत्त्व उनके आचार्यत्व में है। रामचंद्रिका के संवाद बहुत नाटकीय हैं और उसमें विविध छंदों का प्रयोग किया गया है। केशवदास ने **रामचंद्रिका** की रचना 1601 ई. में की थी।

रामभक्ति काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ

- यह काव्य प्रधानतः लोक मंगल एवं सामाजिक मर्यादा का काव्य है।
- इस धारा के प्रमुख कवि तुलसीदास ने अपने काव्य में प्रचलित प्रायः सभी काव्यरूपों, छंदों और लोक गीतों के रूपों का उपयोग किया है।
- रामभक्ति में कुछ रसिक धारा के भी कवि हुए हैं किंतु उन्हें लोकप्रियता नहीं मिली।
- रामभक्ति काव्य में वैष्णव और शैव संप्रदायों में सामंजस्य लाने का प्रयास मिलता है।

कृष्णभक्ति शाखा

महाप्रभु वल्लभाचार्य (1477-1530 ई.) ने भागवत धर्म को आधार बनाकर कृष्णभक्ति धारा की दार्शनिक पीठिका तैयार की और देशाटन करके इस भक्ति का प्रचार किया। भागवत धर्म का उदय प्राचीन काल में ही हो गया था। श्रीमद्भागवत के व्यापक प्रचार से माधुर्य भक्ति का रास्ता खुला।

वल्लभाचार्य के अनुसार जीव तीन प्रकार के हैं – 1. **प्रवाह जीव**, जो सांसारिक प्रवाह में पड़े रहते हैं, 2. **मर्यादा जीव**, जो विधि-निषेध का पालन करते हैं और 3. **पुष्टि जीव**, जो भगवान का अनुग्रह प्राप्त कर लेते हैं। वे कृष्ण की नित्य लीला का अनुभव कर सकते हैं। वल्लभाचार्य ने भक्ति में निहित माहात्म्य या श्रद्धा के अवयव की उपेक्षा करके प्रेम के तत्त्व को ही अपनाया। वल्लभाचार्य के अनेक ग्रंथ हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं– **पूर्व मीमांसा भाष्य**, **श्रीमद्भागवत की टीका**, **अणुभाष्य** एवं **मीमांसा या ब्रह्मसूत्र** का भाष्य।

महाप्रभु वल्लभाचार्य परम विद्वान, सत्संगी एवं परदुखकातर व्यक्ति थे। उन्होंने देश के विभिन्न क्षेत्रों में घूमकर जनसंपर्क और शास्त्रार्थ किया। श्रीकृष्ण की जन्मभूमि में गोवर्धन पर्वत पर श्रीनाथ जी का विशाल मंदिर बनवाया। वहीं अपनी गद्दी स्थापित की।

इस मंदिर में श्रीकृष्ण की जो उपासना होती थी उससे हिंदी साहित्य की कृष्णभक्ति धारा का बहुत गहरा संबंध है।

सूरदास (1478-1583 ई.)

हिंदी साहित्य में श्रेष्ठ कृष्णभक्त कवि सूरदास के बारे में **भक्तमाल** और **चौरासी वैष्णवों की वार्ता** से थोड़ी-बहुत जानकारी मिल जाती है। **आईने अकबरी** और **मुंशियात अबुलफज़ल** में भी किसी संत सूरदास का उल्लेख है, किंतु वे बनारस के कोई और सूरदास प्रतीत होते हैं। जनश्रुति यह अवश्य है कि अकबर बादशाह सूरदास का यश सुनकर उनसे मिलने आए थे। **भक्तमाल** में इनकी भक्ति, कविता एवं गुणों की प्रशंसा है तथा उनकी अंधता का उल्लेख है। **चौरासी वैष्णवों की वार्ता** के अनुसार वे आगरा और मथुरा के बीच साधु या स्वामी के रूप में रहते थे। वे वल्लभाचार्य के दर्शन को गए और उनसे लीलागान का उपदेश पाकर कृष्ण-चरित विषयक पदों की रचना करने लगे। कालांतर में श्रीनाथ जी के मंदिर का निर्माण होने पर महाप्रभु वल्लभाचार्य ने उन्हें वहाँ भजन-कीर्तन का कार्य सौंपा।

सूरदास के विषय में कहा जाता है कि वे जन्मांध थे। उन्होंने अपने को 'जन्म को आँधर' कहा भी है किंतु इसके शब्दार्थ पर अधिक नहीं जाना चाहिए। सूर के काव्य में प्रकृति और जीवन का जो सूक्ष्म सौंदर्य चित्रित है उससे यह नहीं लगता कि वे जन्मांध थे।

सूरदास वात्सल्य और शृंगार के कवि हैं। भारतीय साहित्य क्या, संभवतः विश्व-साहित्य में कोई कवि वात्सल्य के क्षेत्र में उनके समकक्ष नहीं है। यह उनकी ऐसी विशेषता है कि इसी के आधार पर वे साहित्य-क्षेत्र में अत्यंत उच्च स्थान के अधिकारी माने जा सकते हैं। बाल जीवन का ऐसा अनुपम चित्रण महान सहृदय और मानव-प्रेमी व्यक्ति ही कर सकता है। सूरदास ने वात्सल्य और शृंगार का वर्णन लोक सामान्य की भावभूमि पर किया है। सूर ने अपनी रचना में प्रकृति और जीवन के कर्म के क्षेत्रों को अचूक कौशल से उतार लिया है। लोक साहित्य की सहज जीवंतता जितनी सूर के साहित्य में मिलती है, हिंदी के किसी कवि में नहीं।

सूर का बाल लीला वर्णन अपनी सहजता, मनोवैज्ञानिकता एवं स्वाभाविकता में अद्‌वितीय है। उनका काव्य बाल चेष्टाओं के स्वाभाविक मनोहर चित्रों का भंडार है।

उसमें भगवान के मानवीय रूप के मनोरम दर्शन होते हैं। सूर के कृष्ण, सामान्य गृहस्थ के बालक बन गए हैं, जो हठ करके आँगन में लोटने लगते हैं –

काहे को आरि करत मेरे मोहन! यों तुम आँगन लोटी।

कृष्ण चलना सीख रहे हैं। पैर डगमगाते हैं। यशोदा हाथ पकड़कर उन्हें चलना सिखाती है –

सिखवत चलन जसोदा मैया
अरबराय करि पानि गहावति डगमगात धरै पैयाँ।

सूरदास के बाल लीला वर्णन में चित्रण ऐसा है जिसकी दृश्यता में जीवन स्पंदित है। पंक्तियाँ इतनी सहज हैं कि उनकी मार्मिकता मन में रच-बस जाती है।

'मैया मैं नहिं माखन खायो' – यह पंक्ति मार्मिक क्यों है? समूचे जीवन-चित्र के संदर्भ में रखकर इसे समझा जा सकता है। बालक होते निरीह हैं लेकिन अपने को बहुत चालाक समझते हैं। वयस्क यह सब समझते हैं। कच्ची चालाकी से मिलकर बच्चों की निरीहता वयस्कों के लिए पहले से अधिक निरीह, अत्यंतः प्रिय हो उठती है। कृष्ण के मुख पर माखन लगा है, पकड़ लिए गए हैं रँगे हाथों। लेकिन अपनी तरफ से ज़बर्दस्त तर्कों की झड़ी लगा रहे हैं। उनकी सारी तर्कपटुता उनका ऐसा अपराध ही स्पष्ट कर रही है, जिससे माँ को और प्यार ही उमड़ेगा।

जैसे शृंगार का संयोग और वियोग होता है, वैसे ही वात्सल्य का भी। सूरदास के शृंगारी संयोग वर्णन को वियोग वर्णन की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट माना जाता है, किंतु उनके वात्सल्य के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती। कृष्ण के चले जाने पर नंद-यशोदा की व्याकुलता का जो वर्णन है, वह बहुत मार्मिक है। नंद-यशोदा दोनों कृष्ण की पिछली बातों का स्मरण करते हैं, एक-दूसरे पर खीझते हैं, कृष्ण के न आने के लिए एक-दूसरे को दोष देते हैं। उनकी व्याकुलता में ग्वाल-बाल और प्रकृति भी शामिल है। अपने पदों में सूरदास ने पूरे ब्रज की जो दारुण व्यथा उभारी है, वह व्यथा प्रभाव की दृष्टि से नाटकों और महाकाव्यों में मिलने वाली करुणा के समान है।

सूरदास के यहाँ राधा-कृष्ण का प्रेम परिचय से विकसित होता है। वह प्रकृति और कर्म-क्षेत्र की पृष्ठभूमि में पुष्पित-पल्लवित होता है। गोचारण जीवन में प्रकृति का पूरा अवकाश है। सूर के राधा-कृष्ण की प्रेम लीला में प्रकृति, गायों और ग्वाल-बालों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसी से उनकी प्रेम लीला जीवन से कहीं कटी अलग-थलग नहीं

है। राधा और कृष्ण के प्रथम परिचय का जो चित्र सूर ने खींचा है, वह उनके लोक परिचय का प्रमाण है। साहित्य में प्रेम के सूत्रपात का ऐसा जीवंत चित्र दुर्लभ होगा –

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज-खोरी।

मुक्तकों में ऐसी स्वाभाविक संवाद-योजना भी कम मिलेगी। सूरदास द्वारा चित्रित राधा-कृष्ण की प्रेम लीला में मध्य कालीन नारी के सहज जीवन का स्वप्न जैसे साकार हो उठा है। यह स्वप्न सर्वाधिक साक्षात रास-लीला वर्णन में होता है। सूरदास के समय अर्थात 16वीं शती में ब्रज में नारियों को वह स्वाधीनता नहीं थी, जिसका वर्णन **सूरसागर** में मिलता है। यह सच है कि रास-लीला का साधनात्मक अर्थ भी है, जहाँ गोपियाँ साधकों की प्रतीक हैं, किंतु काव्य का प्रतीकार्थ ही ठीक नहीं होता उसका साधारण या वाच्यार्थ भी संगत होता है। गोपियाँ लोक-लाज तजकर घर की चहारदीवारी ही नहीं तोड़तीं, वे कृष्ण की बाँसुरी सुनकर उस सामाजिक व्यवस्था को भी तोड़ती हैं, जो नारियों को पराधीन रखती हैं। जिस तरह तुलसी ने मध्य कालीन भारत में दैहिक, दैविक, भौतिक तापों से रहित 'रामराज्य' का स्वप्न देखा है, वैसे ही सूर ने कृष्ण-कथा और रास-लीला के माध्यम से एक ऐसा सर्वसुखद स्वप्न देखा है, जिसमें नारी और पुरुष दोनों समान तौर पर स्वाधीन हैं। रास-लीला सुख विभोर मानवता का सजीव, गतिमय स्पंदित चित्र है।

सूर का विरह वर्णन भी अधिकांशतः स्वाभाविक पद्धति से ही चित्रित है। इसमें भी कृष्ण की स्मृति प्रायः दैनंदिन जीवन प्रसंगों में आती है। सूर के विरह वर्णन की मार्मिकता का आधार विरहावस्था में हृदय की नाना वृत्तियों का स्वाभाविक पद्धति का चित्रण है। विरह-वर्णन वहाँ उत्कृष्ट है, जहाँ गोपियों की निरीह विवशता प्रकट होती है। **साहित्य लहरी** में सूर के दृष्टकूट के पद संकलित हैं जो काव्य-रूढ़ियों में निबद्ध होने के कारण दुरूह हैं। **साहित्य लहरी** की प्रामाणिकता भी संदिग्ध है।

वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने पुष्टिमार्गी कवियों में से आठ कवियों को चुनकर उन्हें **अष्टछाप** की संज्ञा दी। ये कवि हैं – सूरदास, कुंभनदास, परमानंद दास, कृष्णदास, छीत स्वामी, गोविंद स्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास। इनमें से प्रथम चार वल्लभाचार्य के शिष्य थे और शेष स्वयं विट्ठलनाथ के। सूरदास और उनकी कविता के विषय में हम जान चुके हैं। शेष कवियों में नंददास प्रमुख हैं।

नंददास (16वीं शताब्दी)

नंददास 16वीं शती के अंतिम चरण में विद्यमान थे। इनके विषय में **भक्तमाल** में लिखा है – 'चंद्रहास-अग्रज सुहृद परम प्रेम-पथ में पगे।' इनके काव्य के विषय में यह उक्ति प्रसिद्ध है – 'और कवि गढ़िया, नंददास जड़िया।' इससे प्रकट होता है कि इनके काव्य का कला पक्ष महत्त्वपूर्ण है। इनकी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं – **रासपंचाध्यायी, सिद्धांत पंचाध्यायी, भागवत दशम स्कंध, रुक्मिणीमंगल, रूपमंजरी, रसमंजरी, दानलीला, मानलीला** आदि। इनके यश का आधार **रासपंचाध्यायी** है। **रासपंचाध्यायी** भागवत के **रासपंचाध्यायी** के अंश पर आधारित है। यह रोला छंद में रचित है। कृष्ण की रास लीला का वर्णन इस काव्य में कोमल एवं सानुप्रास पदावली में किया गया है, जो संगीतात्मकता से युक्त है, जैसे –

ताही छन उडुराज उदित रस-रास-सहायक,
कुंकुम-मंडित-बदन प्रिया जनु नागरि नायक।
कोमल किरन अरुन मानो बन व्यापि रही यों,
मनसिज खेल्यो फागु घुमड़ि घुरि रह्यो गुलाल ज्यों।

अष्टछाप के शेष कवियों ने भी लीला गान के पद कहे हैं, जो प्रधानतः शृंगारी हैं। राधा और कृष्ण के रूप एवं शृंगार के साथ-साथ उनके चरित्र का गुणगान इन कवियों का विषय रहा है।

कृष्णदास (16 वीं शती) वल्लभाचार्य के कृपा-पात्र थे और मंदिर के प्रधान हो गए थे। इनका रचा हुआ **जुगमान चरित्र** नामक ग्रंथ मिलता है। परमानंद दास (16वीं शती) के 835 पद **परमानंद सागर** में संकलित हैं। इनकी कविताएँ सरसता के कारण प्रसिद्ध हैं। कुंभनदास परमानंददास के समकालीन थे। ये अत्यंत स्वाभिमानी भक्त थे। इन्होंने फतेहपुर सीकरी के राजसम्मान से खिन्न होकर कहा था –

संतन को कहा सीकरी सो काम।

कुंभनदास का कोई ग्रंथ नहीं मिलता, फुटकल पद ही मिलते हैं। चतुर्भुजदास, कुंभनदास के पुत्र थे। इनकी तीन कृतियाँ मिलती हैं – **द्वादश यश, भक्तिप्रताप, हितजू को मंगल।** छीतस्वामी 16वीं शती के उत्तरार्द्ध में वर्तमान थे। इनका कोई ग्रंथ नहीं मिलता, फुटकल पद ही मिलते हैं। गोविंद स्वामी का रचनाकाल 1543 ई. और 1568 ई. के बीच

रहा होगा। कहा जाता है कि इनका गाना सुनने के लिए कभी-कभी तानसेन भी आते थे। इनका भी कोई ग्रंथ नहीं मिलता।

अन्य कृष्णभक्त कवि

राधा-वल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक हितहरिवंश का उल्लेख और थोड़ा परिचय भक्ति काल के प्रारंभ में ही दिया जा चुका है। इनका रचनाकाल सन 1543 ई. से 1583 ई. तक माना जाता है। इन्होंने 1525 ई. में वृंदावन में श्रीराधावल्लभ की मूर्ति स्थापित की। **हितचौरासी** में इनकी कविताएँ संकलित हैं। हितहरिवंश द्वारा प्रवर्तित संप्रदाय में राधा की भक्ति की प्रधानता है। हितहरिवंश ने राधा विषयक अत्यंत सरस रचनाएँ की हैं। इनकी उपलब्ध रचनाएँ संख्या में कम हैं।

मीराबाई (1498-1546 ई.)

मीराबाई के बारे में अनेक किंवदंतियाँ गढ़ ली गई हैं। ये महाराणा सांगा की पुत्र-वधू और महाराणा कुमार भोजराज की पत्नी थीं। कहा जाता है कि विवाह के कुछ वर्षों के बाद जब इनके पति का देहांत हो गया तो ये साधु-संतों के बीच भजन-कीर्तन करने लगीं। इस पर इनके परिवार के लोग, विशेषकर, देवर राणा विक्रमादित्य बहुत रुष्ट हुए। उन्होंने इन्हें नाना प्रकार की यातनाएँ दीं। इन्हें विष तक दिया गया। खिन्न होकर इन्होंने राजकुल छोड़ दिया। इनकी मृत्यु द्वारिका में हुई।

मीरा का सामान्य लोगों के बीच उठना-बैठना उस सामाजिक व्यवस्था को असह्य था जिसमें नारी पति के मरने पर या तो सती हो सकती थी या घर की चहारदीवारी के भीतर वैधव्य झेलने के लिए अभिशप्त थी। मीरा को भक्त होने के लिए लोक-लाज छोड़नी पड़ी। लोक-लाज तजने की बात मीरा की कविताओं में बार-बार आती है। मीरा ने अपने इष्टदेव गिरधर नागर का जो रूप चित्रित किया है, वह अत्यंत मोहक हैं। मीरा के यहाँ विरह वेदना उनका यथार्थ है तो कृष्ण मिलन उनका स्वप्न। मीरा के जीवन के यथार्थ की प्रतिनिधि पंक्ति है – 'अँसुवन जल सींचि-सींचि, प्रेम-बेलि बोई।' और उनके स्वप्न की प्रतिनिधि पंक्ति है – "सावन माँ उमग्यो म्हारो हियरा भणक सुण्या हरि आवण री।" मीरा के काव्य में मध्य कालीन नारी का जीवन बिंबित है।

मीरा भक्त कवयित्री हैं। उनकी व्याकुलता एवं वेदना उनकी कविता में निश्छल अभिव्यक्ति पाती है। मीरा की कविता में रूप, रस और ध्वनि के प्रभावशाली बिंब हैं। वे अपनी कविता में वेदना को श्रोताओं और पाठकों के अनुभव के माध्यम से संप्रेषित करती हैं 'घायल की गति घायल जाणै और न जाणै कोय' का यही अभिप्राय है।

मीरा के काव्य पर निर्गुण-सगुण दोनों साधनाओं का प्रभाव है। नाथ मत का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है। उन्होंने रामकथा से संबंधित कुछ गेयपद भी लिखे हैं।

रसखान (1548-1628)

इनका वृत्तांत **दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता** में मिलता है और उससे प्रकट होता है कि ये लौकिक प्रेम से कृष्ण-प्रेम की ओर उन्मुख हुए। इनकी प्रसिद्ध कृति **प्रेम वाटिका** का रचनाकाल 1614 ई. है। कहते हैं कि ये गोसाईं विट्ठलनाथ के शिष्य थे।

रसखान ने कृष्ण का लीलागान सवैयों में किया है। रसखान को सवैया छंद सिद्ध था। जितने सरस, प्रवाहमय सवैये रसखान के हैं, उतने शायद ही किसी अन्य हिंदी कवि के हों। ब्रजभाषा का ऐसा सहज प्रवाह अन्यत्र बहुत कम मिलता है।

मोर पखा सिर ऊपर राखिहौं, गुंज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढ़ि पितांबर लै लकुटी बन गोधन ग्वारनि संग फिरौंगी।
भावतो सोई मेरो रसखानि सो तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी।।

कृष्णभक्त कवियों की सुदीर्घ परंपरा है। स्वामी हरिदास, हरीराम व्यास, सुखदास, लालदास, नरोत्तमदास आदि अन्य कृष्णभक्त कवि हैं। इनमें नरोत्तमदास का **सुदामा-चरित** अपनी मार्मिकता और सहज प्रवाह के कारण बहुत लोकप्रिय है।

रहीम (1556-1627 ई.)

रहीम (अब्दुर्रहीम खानखाना) सम्राट अकबर के प्रसिद्ध सेनापति बैरम खाँ के पुत्र थे। इनकी गणना कृष्णभक्त कवियों में की जाती है। रहीम ने **बरवै नायिका भेद** भी लिखा है, जो निश्चित रूप से रीतिकाव्य की कोटि में रखा जाएगा, किंतु रहीम को भक्त हृदय मिला था। उनके भक्तिपरक दोहे उनके व्यक्ति और रचनाकार का वास्तविक प्रतिनिधित्व

करते हैं। कहते हैं, उनके मित्र तुलसी ने **बरवै रामायण** की रचना रहीम के बरवै काव्य से उत्साहित होकर की।

रहीम अरबी, फ़ारसी, संस्कृत आदि कई भाषाओं के जानकार थे। वे बहुत उदार, दानी और करुणावान थे। अंत में उनकी मुगल दरबार से नहीं पटी और जनश्रुति के अनुसार उनके अंतिम दिन तंगी में गुज़रे। रहीम की अन्य रचनाएँ हैं – **रहीम दोहावली या सतसई, शृंगार सोरठा, मदनाष्टक, रासपंचाध्यायी।** उन्होंने **खेल कौतुकम्** नामक ज्योतिष का ग्रंथ भी रचा है, जिसकी भाषा संस्कृत-फ़ारसी मिश्रित है। रहीम ने तुलसी के समान अवधी और ब्रज दोनों में अधिकारपूर्वक काव्य-रचना की है।

रहीम के भक्ति और नीति के दोहे आज भी लोगों की ज़बान पर हैं।

कृष्णभक्ति काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ

- हिंदी का कृष्णभक्ति काव्य कृष्ण की लीला पर आधारित लीला काव्य है।
- कृष्णभक्ति काव्य प्रधानतः शृंगार का काव्य है। सूरदास जैसे महान कवि के बाल-लीला वर्णन के कारण वह वात्सल्य का अपूर्व काव्य है।
- इसमें संयोग और वियोग दोनों का उत्कृष्ट वर्णन है।
- कृष्णभक्ति धारा के अष्टछाप के कवियों ने कृष्णलीला के अंतर्गत राधाकृष्ण और गोप-गोपियों का वर्णन लोक जीवन के सामान्य रूपों में किया है, जैसे दधिलीला, रासलीला, चीरहरण लीला आदि।
- कृष्णभक्ति काव्य ब्रजभाषा में रचा गया है।
- कृष्णभक्ति के लीला पद संगीतात्मक हैं। संगीतकारों ने इस काव्य का प्रचुर उपयोग किया है।
- कृष्णभक्ति काव्य परवर्ती रीतिकाव्य का आधार बना। यह काव्य अंशतः मंदिरों में गाने के लिए रचा गया। कृष्णभक्ति काव्य प्रधानतः गेयपदों और कवित्त, सवैयों में रचा गया। नाना कवियों ने प्रचलित लोकगान शैलियों में भी रचना की।

हिंदी भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ

भक्ति का शास्त्र यद्यपि दक्षिण में बना, किंतु उसका पूर्ण उत्कर्ष उत्तर में हुआ। भक्ति आंदोलन अखिल भारतीय था। भारत की सभी भाषाओं के साहित्य पर भक्ति आंदोलन का प्रभाव है। लोक साहित्य पर भी इसका प्रभाव कम नहीं। फलतः यह शास्त्र की उपेक्षा करनेवाला लोकोन्मुख आंदोलन था, इसीलिए लोक जीवन से इतना रस संचित कर सका। हिंदी भक्त कवियों ने आध्यात्मिक साधना की ही बात नहीं की, उन्होंने सामंतवादी युग में सामंतवादी व्यवस्था की अमानवीयता की आलोचना की, यथासंभव हर प्रकार की पीड़ा और हिंसा का विरोध किया। सांसारिक अन्यायी शक्ति को परम सत्ता या अलौकिक शास्त्र-संपन्न सगुण रूप के सामने रखकर उसे तुच्छ दिखाया। इसीलिए यह उल्लास और जीवन का साहित्य है।

हिंदी भक्ति आंदोलन और साहित्य की कुछ निजी विशेषताएँ हैं। हिंदी साहित्य में भक्ति काल दीर्घ व्यापी लगभग तीन शताब्दियों तक प्रभावी रहा। शायद ही किसी अन्य भारतीय भाषा में इतनी संख्या में श्रेष्ठ कवि– कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा, नानक जैसे हुए हैं। भक्ति-साहित्य में मुसलमान कवियों का योगदान भी अन्यत्र नहीं मिलता। सगुण भक्ति साहित्य में अन्यत्र कहीं रसखान, रहीम जैसे कवि हैं, यह संदिग्ध है। प्रबंधकार सूफी कवि भी अन्य भाषा-साहित्य में शायद ही मिलें। इसका कारण यह है कि इस्लामी संस्कृति का प्रभाव सबसे पहले उत्तर भारत में हुआ। उसकी पहली टक्कर यहीं हुई, इसलिए साधनाओं का समन्वय भी यहाँ अधिक दिखलाई पड़ा।

हिंदी के भक्ति साहित्य में एक व्यापक मानवीय संवेदना के साथ-साथ प्रतिष्ठानों को चुनौती देने का भी स्वर है।

अध्याय 3

रीति काल (1700-1850 ई.)

पृष्ठभूमि

रीति काल से आशय हिंदी साहित्य के उस काल से है, जिसमें निर्दिष्ट काव्यरीति या प्रणाली के अंतर्गत रचना करना प्रधान साहित्यिक प्रवृत्ति बन गई थी। 'रीति' 'कवित्त रीति' एवं 'सुकवि रीति' जैसे शब्दों का प्रयोग इस काल में बहुत होने लगा था। हो सकता है शुक्ल जी ने इसी कारण इस काल को **रीति काल** कहना उचित समझा हो। काव्यरीति के ग्रंथों में काव्य-विवेचन करने का प्रयास किया जाता था। हिंदी में जो काव्य विवेचन इस काल में हुआ, उसमें इसके बहाने मौलिक रचना भी की गई है। यह प्रवृत्ति इस काल में प्रधान है। लेकिन इस काल की कविता प्रधानतः शृंगार रस की है। इसीलिए इस काल को **शृंगार काल** कहने की भी बात की जाती है। 'शृंगार' और 'रीति' यानी इस काल की कविता की वस्तु और उसका रूप किस प्रकार एक दूसरे से जुड़ गए, इसे समझने के लिए हमें कुछ और बातें जाननी पड़ेंगी।

संस्कृत में काव्य-विवेचन शास्त्रज्ञ आचार्य करते थे, कवि नहीं। वे काव्य-विवेचन के दौरान प्रसिद्ध कवियों की रचनाओं को उद्धृत करके अपनी बात समझाते थे। रीति काल के हिंदी-शास्त्र पर विचार करने वाले मूलतः आचार्य नहीं, कवि थे। इसलिए उन्होंने नायकों, नायिकाओं, रसों, अलंकारों, छंदों के विवेचन पर कम, इनके दिए गए लक्षणों के उदाहरणों के रूप में रचनाओं पर ज़्यादा ध्यान दिया है। उन्होंने अन्य कवियों की रचनाओं के उदाहरण नहीं दिए। उदाहरणों के लिए खुद कविता की। इसीलिए इस काल में आचार्य और कवि दोनों एक ही व्यक्ति होने लगे। इससे यह अवश्य हुआ कि इस प्रणाली के कारण रीति काल में सुंदर रचनाएँ बहुत अधिक मात्रा में लिखी गईं।

भक्ति मूलतः प्रेम ही है। भक्ति कालीन प्रेम या शृंगार में धार्मिकता का आवेश क्रमशः क्षीण होता गया। भक्ति काल का अलौकिक शृंगार रीति काल में आकर लौकिक शृंगार बन गया। सच्ची बात तो यह है कि वह वास्तविक लौकिक शृंगार भी कम बना। केवल कुछ लोगों यानी अवकाश भोगी भोक्ता वर्ग के मनोरंजन का साधन बना। केंद्र में एक शक्तिशाली सत्ता थी। सामंतगण उसके अधीन थे। अतः परस्पर लड़ने-झगड़ने का भी अवकाश नहीं था। जिन सामंतों ने अधीनता स्वीकार कर ली थी, वे चैन से विलास करते थे। रीति कालीन काव्य अधिकांशतः इस विलासिता का साधन एवं प्रसाधन है। इन सामंतों के जीवन और रुचि में एकरसता एवं ठहराव है। इस एकरसता और ठहराव का कारण है केवल निर्दिष्ट जीवन-प्रणाली में काल-यापन। न अपने से भिन्न या विपरीत जीवन से कोई टकराव, न उसकी चिंता। यह निर्दिष्ट जीवन-प्रणाली ही इनकी रुचि की कविता में रीति बन गई है। यहाँ काव्यरीति और यह ठहरा हुआ शृंगार इस निष्क्रिय सामंती रुचि में ढल गए हैं। शिवाजी, छत्रसाल जैसे सक्रिय सामंतों की रुचि की कविता इससे भिन्न है।

इससे यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि इस काल में वास्तविक प्रेम (शृंगार), भक्ति या अन्य प्रकार की कविताएँ नहीं हुईं। रीति का अवलंब लेकर भी कवियों ने सामान्य गृहस्थ जीवन के सीमित ही सही, मार्मिक चित्र खींचे हैं।

प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध शृंगार, नीति की मुक्त रचनाओं की धारा रीति काल में प्रभावशाली ढंग से फिर प्रवाहित होती दिखलाई पड़ती है। भक्ति काल में भक्ति के आवेग के सामने यह छिप-सी गई थी। **गाथा सप्तशती, आर्यासप्तशती** जैसी अपभ्रंश के मुक्तकों के समान सरस मनोहारी रचनाएँ रीति काल में प्रभूत मात्रा में लिखी गईं। इन रचनाओं में सामान्य जन-जीवन और परिवार में व्याप्त प्रेम, उल्लास, मिलन, विरह की हृदय-हारिणी अभिव्यक्ति हुई। शुद्ध ऐहिकतापरक सरस मुक्तकों की रचना की दृष्टि से रीति काल बेजोड़ है।

भक्ति की कविताओं की परंपरा इस काल में समाप्त नहीं हुई, किंतु कबीर, सूर, जायसी, तुलसी, मीरा जैसे लोक-संग्रही मानवीय करुणा वाले उत्कृष्ट भक्त कवियों के सामने इस काल के भक्त कवि कहाँ ठहरते? भक्ति इस काल की क्षीयमाण काव्यधारा है; वह भी अपने को काव्यरीति में ढाल रही थी। यही कारण है कि इस काल के प्रारंभ में ही ऐसे अनेक कवि दिखलाई पड़ते हैं, जिनका विषय तो भक्ति है किंतु लगते रीति

काल के कवि हैं। ऐसे कवि वस्तुतः रीति धारा के ही कवि माने जाने चाहिए जैसे – केशव, गंग, सेनापति, पद्माकर आदि। इनकी भक्ति भी ठहरी हुई और एकरस है।

इस काल में रीति से हटकर स्वच्छंद प्रेम काव्य भी रचा गया जिसमें काव्य-कौशल होते हुए भी प्रेम विशेषतः विरह की तीव्र व्यंजना है। ऐसे कवियों की रचनाओं पर सूफ़ी कवियों के 'प्रेम की पीर' का प्रभाव स्पष्ट है। घनानंद इसी श्रेणी के कवि हैं। स्वच्छंद प्रेम मार्ग पर चलकर रचना करने वाले अन्य कवि आलम, बोधा, ठाकुर हैं। इन बातों को ध्यान में रखते हुए रीति कालीन काव्य को तीन धाराओं में विभाजित किया जाता है --

रीतिबद्ध : इस धारा के कवियों ने अलंकार, नायिका भेद आदि के लक्षण बताकर उनके उदाहरणस्वरूप काव्य रचा है। जैसे – केशव, पद्माकर, मतिराम आदि। वस्तुतः ये मूलतः कवि थे।

रीतिसिद्ध : इसमें वे कवि आते हैं जो लक्षण-उदाहरण की पद्धति प्रकट रूप में तो नहीं अपनाते किंतु रचना करते समय उनका ध्यान रखते हैं। बिहारी ऐसे कवि हैं।

रीतिमुक्त : इस धारा के कवि लक्षण-उदाहरण की न तो पद्धति अपनाते हैं और न उनका ध्यान रखते हैं। घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर आदि रीतिमुक्त या स्वच्छंद धारा के कवि माने जाते हैं।

इस काल के दरबारी कवियों में कभी-कभी दरबारी कविता से असंतोष की भी प्रखर भावना पाई जाती है। ऐसा होना स्वाभाविक भी था। आश्रयदाता की वास्तविकता कवि समझते थे। धन के लिए उन्हें प्रशंसा करनी पड़ती थी। कुछ कवियों ने कंजूस सामंतों या आश्रयदाताओं की अच्छी खबर ली है। आश्रित किंतु स्वाभिमानी कवियों की मानसिक पीड़ा भी रीति काल में व्यक्त हुई।

इस काल की काव्यभाषा प्रमुखतः ब्रजभाषा है। रीति काल मुक्तकों का युग है। कवित्त, सवैया को इस काव्य में बहुत प्रयुक्त किया गया है। इस काल की काव्यभाषा पर वातावरण के अनुसार फ़ारसी का भी प्रभाव है। काव्यांग-निरूपण और विशिष्ट रुचि के लिए लिखी जाने के कारण इस काल की कविता में अलंकारों का बाहुल्य है।

प्रमुख रीतिबद्ध कवि

केशवदास (1555-1617 ई.)

केशवदास के पूर्वज संस्कृत के विद्वान थे। केशव ओरछा नरेश महाराजा रामसिंह के भाई इंद्रजीत सिंह के सभा-कवि थे। यहाँ इनका बहुत सम्मान था। केशवदास द्वारा रचित सात ग्रंथ मिलते हैं – **कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचंद्रिका, वीरसिंह देवचरित, विज्ञान गीता, रतन बावनी और जहाँगीर-जस चंद्रिका। कविप्रिया** और **रसिकप्रिया** काव्यशास्त्रीय पुस्तकें हैं।

केशवदास का उल्लेख रामभक्ति शाखा के प्रसंग में हो चुका है। उन्होंने 'रामकथा' का वर्णन **रामचंद्रिका** में किया है। केशव का महत्त्व इस बात में है कि उन्होंने पहली बार काव्यांगों पर हिंदी में विचार किया। इसके पूर्व कृपाराम, मोहनलाल मिश्र, करनेस आदि ने रस, शृंगार और अलंकार पर अलग-अलग पुस्तकें लिखी थीं, पर एक साथ सभी काव्यांगों का परिचय नहीं दिया था। केशव ने यही किया और इसीलिए वे हिंदी के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। वे काव्य में अलंकार को अधिक महत्त्व देते थे।

केशव हिंदी के प्रथम आचार्य हैं किंतु रीतियों की परंपरा चिंतामणि (जन्म 1609 ई.) से चली। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ **कविकुल कल्पतरु** है। इस काल के अन्य प्रसिद्ध आचार्य कवि हैं – भिखारीदास (18वीं शती, ग्रंथ **काव्य निर्णय**), तोष (1634 ई. ग्रंथ **सुधानिधि**), कुलपति (1670 ई., ग्रंथ **रस रहस्य**), सुखदेव मिश्र (1673 ई., ग्रंथ **रसार्णव**) आदि हैं। इनके उपजीव्य संस्कृत ग्रंथ **काव्य प्रकाश, साहित्यदर्पण, रसमंजरी, चंद्रालोक** और **कुवलयानंद** हैं।

सेनापति (1584-1688 ई.)

सेनापति की रचनाओं से लगता है कि यद्यपि इनका कुछ दरबारों में सम्मान हुआ, किंतु बाद में ये विरक्त हो गए। इनकी दो रचनाएँ हैं – **कवित्त रत्नाकर** और **काव्य कल्पद्रुम। कवित्त रत्नाकर** में भक्ति-भाव के छंद हैं। रीति कालीन कवियों में सेनापति का अपना महत्त्व और स्थान है। ऋतु वर्णन के कारण रीति कालीन कवियों ने प्रकृति का उपयोग प्रायः उद्दीपन के ही अंतर्गत किया है, किंतु सेनापति इस काल के अकेले

कवि हैं जिनका प्रकृति के प्रति भावबोध इतना सहज है कि आधुनिक-सा लगता है। ऋतुवर्णन में इनका सादृश्य विधान मौलिक है। वर्षा का यह वर्णन देखिए –

सेनापति उनए नए जलद सावन के,
चारिह दिसान घुमरत भरे तोय कै।
सोभा सरसाने न बखाने जात कैहूँ भाँति,
आने हैं पहार मानो काजर कै ढोय कै।
घन सो गगन छप्यो तिमिर सघन भयो,
देखि न परत मनो रवि गयो खोय कै।
चारि मास भरि स्याम निसा को भरम मानि,
मेरे जानि याही तें रहत हरि सोय कै।

देव (1673-1767 ई.)

देव अनेक आश्रयदाताओं के यहाँ रहे और उनकी रुचि के अनुकूल रचनाएँ कीं। इनके रचे ग्रंथों की संख्या काफी है, उनमें कुछ इस प्रकार हैं : **भावविलास, भवानीविलास, रसविलास, सुखसागर तरंग, अष्टयाम, प्रेमचंद्रिका, काव्यरसायन।**

देव रीति काल के श्रेष्ठ कवियों में से हैं। इनकी तुलना बिहारी से की गई है। देव ने भी लक्षण-ग्रंथ लिखे हैं। अतः इन्हें भी रीति काल के आचार्य कवियों की कोटि में रखा जा सकता है। किंतु देव मूलतः आचार्य नहीं, कवि ही थे।

देव में मौलिक रचनाकार की प्रतिभा और सहृदयता प्रचुर मात्रा में थी। लोकप्रियता की दृष्टि से वे बिहारी से बहुत पीछे नहीं हैं। देव की काव्य-भूमि बिहारी से कहीं अधिक व्यापक है। इन्होंने प्रकृति के क्रियाकलाप को देखकर अनेक उत्तम रूपक बाँधे हैं –

डार द्रुम पालना बिछौना नव पल्लव के,
सुमन झिंगूला सोहै तन छवि भारी दे।
पवन झुलावै, केकी-कीर बहरावैं देव,
कोकिल हलावै-हुलसावै कर तारी दै।
पूरित पराग सों उतारो करे राई लोन,
कंज कली नायिका लतानि सिर सारी दै।

मदन महीप जू को बालक वसंत ताहि,
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै।

देव में उत्कृष्ट बिंब विधान पाया जाता है। जैसे –

बड़े-बड़े नैनन सों आँसू-भरि-भरि ढरि
गोरो गोरो मुख आज ओरो सो बिलानो जात।

देव काव्य कला के कुशल कवि हैं, किंतु चमत्कार या काव्य रूढ़ियों के आधार पर रचना करने की प्रवृत्ति उनमें बिहारी की अपेक्षा कम है। इसीलिए उनमें चमत्कृत करने की अपेक्षा रमाने की प्रवृत्ति अधिक है।

भूषण (1613-1715 ई.)

भूषण रीति काल के दो प्रसिद्ध कवियों – चिंतामणि और मतिराम के सगे भाई थे। चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र ने इन्हें 'कवि भूषण' कहा। फिर ये इसी नाम से प्रसिद्ध हुए। वास्तविक नाम कुछ और रहा होगा। ये वीर रस के कवि थे। इन्होंने रीति काल की परंपरा में एक अलंकार ग्रंथ **शिवराज भूषण** भी लिखा है। इनके जो ग्रंथ मिलते हैं; वे इस प्रकार हैं – **शिवराज भूषण, शिवा बावनी, छत्रसाल दसक।**

रीति कालीन कविता का प्रधान स्वर शृंगार का है। भूषण का स्वर वीरता का है। इसलिए ये रीति काल के विशिष्ट कवि हैं, लेकिन भूषण के महत्त्व पर विचार करते समय कुछ और बातों की ओर भी ध्यान जाता है। रीति काल में कुछ अन्य कवियों ने भी वीरता की कविताएँ लिखी हैं, किंतु उनको भूषण जैसी प्रसिद्धि नहीं मिली। इसका प्रमुख कारण यह है कि काव्योत्कर्ष की दृष्टि से वे इस क्षेत्र में भूषण जैसे कवि नहीं हैं। भूषण ने अपनी काव्य पंक्तियों में अनेक ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख किया है, जैसे – अफ़जल खाँ का शिवाजी द्वारा मारा जाना, दारा की औरंगज़ेब द्वारा हत्या, सूरत पर शिवाजी का अधिकार, खजुवा का युद्ध, शिवाजी का औरंगज़ेब के दरबार में जाना आदि। उनका एक प्रसिद्ध कवित्त इस प्रकार है –

इंद्र जिमि जंभ पर, बाडव सुअंभ पर,
रावण सदंभ पर रघुकुलराज हैं।
पौन बारिवाह पर, संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज हैं।

दावा द्रुम दंड पर, चीता मृग झुंड पर,
भूषण वितुंड पर जैसे मृगराज हैं।
तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों म्लेच्छ वँस पर सेर सिवराज हैं।

मतिराम (1603-1701 ई.)

मतिराम रीति काल के प्रसिद्ध आचार्य कवि हैं। उनके ग्रंथों के नाम हैं – **छंदसार, रसराज, साहित्य सार, लक्षण शृंगार** और **ललित ललाम। रसराज** और **ललित ललाम** उनके यश के आधार ग्रंथ हैं।

मतिराम रीति काल में भाषा की प्रवाहमयता और भाव की सहजता के प्रतिमान हैं। उनकी शैली इतनी सहज है कि उनकी कविता अन्य रीति कालीन कवियों से अलग लगती है। वे रीति काल में व्याप्त चमत्कारिकता से लगभग अछूते रचनाकार हैं। उनकी भाव-योजना बिलकुल सीधी होती है। वे बात को घुमाकर कहने में विश्वास नहीं करते। वे काव्य रूढ़ियों का कम-से-कम प्रयोग करते हैं। लक्षण ग्रंथों के रचयिता होने के बावजूद उनके काव्य में अलंकृत पदयोजना बहुत कम मिलती है। उनकी काव्यगत सहजता का एक उदाहरण है –

क्यों इन आँखिन सो निहसंक ह्वै मोहन को तन पानिप पीजै।
नेकु निहारे कलंक लगै, यही गाँव बसे कहु कैसे के जीजै।।
होत रहे मन यों, मतिराम कहूँ बन जाय बड़ो तप कीजै।
ह्वै वनमाल हिए लगिए अरु ह्वै मुरली अधरा-रस पीजै।।

पद्माकर (1753-1833 ई.)

पद्माकर का जन्म बाँदा में हुआ था। ये रीति काल के अत्यंत प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय कवि हैं। ये अनेक गुणग्राहकों के द्वारा सम्मानित किए गए। सुगरा, सतारा, जयपुर, ग्वालियर के दरबारों में इनका आदर हुआ। बाँदा और अवध के नवाबों के सेना अधिकारी हिम्मत बहादुर के नाम पर इन्होंने **हिम्मत बहादुर बिरुदावली** लिखी। इनके द्वारा रचित कुछ अन्य ग्रंथ इस प्रकार हैं – **जगद्विनोद, पद्माभरण, प्रबोध पचासा, राम रसायन, गंगा लहरी। जगद्विनोद** लक्षण ग्रंथ है।

पद्माकर भी मतिराम के समान भाषा और भाव की प्रवाहमयी सहजता के कारण लोकप्रिय हैं, किंतु पद्माकर की कविता शृंगार, भक्ति और वीरता तीनों भूमियों पर समान अधिकार के साथ रस का संचार करती है। विभिन्न भावों के अनुरूप भाषा को सहज तौर पर ढाल लेने में ये सिद्ध थे। शुक्ल जी के शब्दों में, "इनकी भाषा में वह अनेकरूपता है जो एक बड़े कवि में होनी चाहिए। भाषा की ऐसी अनेकरूपता गोस्वामी तुलसीदास में दिखाई पड़ती है। पद्माकर के काव्य में कहीं-कहीं विदग्धता भी मिलती है लेकिन वह कविता के केंद्रीय भाव में ढल जाती है। पद्माकर में बिहारी की तरह समुचित बाह्य चेष्टाओं की योजना द्वारा आंतरिक भाव को व्यंजित करने की प्रतिभा थी। इनमें चमत्कार प्रियता नहीं के बराबर मिलती है।"

पद्माकर की वीर रस की कविताओं में भूषण की तरह ही वीरोचित ओज तो है, किंतु भाषा व्यवस्थित बनी रहती है। पद्माकर की **गंगा लहरी** में एक शांति चाहने वाले मन की और गंगा के माहात्म्य पर अटूट श्रद्धा दिखलाई पड़ती है। पद्माकर के काव्य में बुंदेलखंड की प्रकृति का सजीव चित्रण हुआ है। पद्माकर के काव्य की विशेषता भावों को व्यंजित करने में समर्थ सजीव चित्र खींच देने में है। नीचे दिए हुए सवैए से इस कथन की पुष्टि हो जाएगी –

फागु की भीर अभीरिन में गहि गोबिंदै लै गई भीतर गोरी,
भाइ करी मन की पद्माकर ऊपर नाई अबीर की झोरी।
छीनि पितंबर कम्मर तें सु विदा दई मीड़ि कपोलन रोरी,
नैन नचाय कही मुसुकाय 'लला फिरि आइयो खेलन होरी'।

गंग (16वीं शताब्दी)

गंग अकबर के दरबारी कवि थे। ये रहीम के मित्र थे। गंग का व्यक्तित्व भारतीय साहित्य में अनुपम है। इनका कोई ग्रंथ नहीं मिलता। लेकिन समकालीन और परवर्ती कवियों ने इनका नाम अत्यंत सम्मान से लिया है। कहा गया है कि 'तुलसी गंग दुओ भए कवियन के सरदार' इसी से कवि समाज के बीच इनके स्थान का अनुमान किया जा सकता है। इनकी कविताएँ प्रधानतः शृंगार की ही हैं। दरबार में थे ही इसलिए, उनके काव्य में विदग्धता भी थी। कुल मिलाकर अपनी रचना पद्धति से ये रीति काल के ही कवि ठहरते हैं। गंग का एक कवित्त इस प्रकार है –

झुकत कृपान मैदान ज्यों उदोत भानु एकन ते एक मानो सुषमा जरद की।
कहै कवि गंग तेरे बल को बयारि लगे, फूटी गजघटा ज्यों सरद की।।
एते मान सोनित की नदियाँ उमड़ि चलीं रही न निसानी कहूँ महि में गरद की।
गौरी गह्यो गिरिपति गनपति गह्यो गौरी, गौरीपति गहि पूछ लपकि बरद की।।

प्रमुख रीतिसिद्ध कवि

बिहारी (1600-1663 ई.)

बिहारी रीति काल के प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय कवि हैं। वे रीति काव्य के प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं। उनकी रचना में काव्य रीति रची-बसी है। वे जयपुर के मिर्ज़ा राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे। वहाँ उनका अच्छा सम्मान था।

बिहारी के यश का आधार **सतसई** है। इतना कम लिखकर इतना अधिक यश कम साहित्यकारों को मिला होगा। **बिहारी सतसई** की लोकप्रियता का यह हाल है कि इसकी पचासों टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं और यह काम अभी बंद नहीं हुआ है। बिहारी मूलतः शृंगार के कवि हैं। यद्यपि उन्होंने भक्ति और नीति के भी मार्मिक दोहे रचे हैं।

बिहारी के शृंगारी दोहों में सामंती जीवन का वैभव-विलास ही चित्रित नहीं है, वे सामान्य गृहस्थ के दैनिक जीवन के भी सरस चित्र खींचते हैं। उन्होंने देवर, भाभी, जेठ, ननद, सास, पड़ोसिन, वैद्य, ज्योतिषी, खेत, बाग, सरोवर सब के संदर्भ में शृंगार के सरस चित्र खींचे हैं। बिहारी का विषय सीमित है, लेकिन आधार फलक सीमित नहीं। बिहारी बहुज्ञ थे और उन्होंने अपनी विस्तृत जानकारी का उपयोग अपनी रचना में किया है। एकाध दोहों में उन्होंने सामंतों को ठीक मार्ग पर चलने या नीति के पालन का उपदेश भी दिया है।

बिहारी नायक-नायिकाओं की चेष्टाओं का वर्णन निहायत सधे ढंग से करते हैं। इस बहुचर्चित दोहे में उनकी यह निपुणता देखी जा सकती है-

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करे भौंहन हँसे, दैन कहै नटि जाइ।।

बिहारी के एकाध दोहे ऐसे भी हैं जो उनके अनुरागी चित्त की सहज अभिव्यक्ति हैं, जैसे–

सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं बहै, वा जमुना के तीर।।

लेकिन यह निरलंकृति बिहारी के यहाँ सुलभ नहीं है। वे मूलतः उस दरबारी विदग्धता के कवि हैं जो उस समय हिंदी और उर्दू साहित्य के सामंताश्रित कवियों के यहाँ मिलती है।

प्रमुख रीतिमुक्त कवि

घनानंद (1673-1760 ई.)

सुजान सागर तथा **सुजान संबोधन** के आधार पर किंवदंती है कि घनानंद सुजान नामक नर्तकी से प्रेम करते थे। वे दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह के मीर मुंशी थे। प्रसिद्ध है कि मुहम्मद शाह ने नाराज़ होकर उन्हें दरबार से निकाल दिया। विरक्त होकर वे वृंदावन चले गए और वैष्णव होकर काव्य रचना करने लगे। मृत्यु के समय भी वे सुजान को नहीं भूले। कहते हैं मरते समय उन्होंने अपने रक्त से कवित्त लिखा–

बहुत दिनान की अवधि आस पास परे,
खरे अरबरनि परे हैं उठ जान को।
कहि-कहि आवन छबीले मनभावन को,
गहि गहि राखत ही दै दै सनमान को।।
झूठि बतियानि की पत्यानि तें उदास ह्वै कै,
अब ना घिरत घन आनंद निदान को।
अधर लगे हैं आनि करि कै पयान प्रान,
चाहत चलन ये संदेसो लै सुजान को।

घनानंद के प्रमुख ग्रंथ हैं– **सुजान सागर, विरहलीला, कोकसार, रसकेलि वल्ली** और **कृपाकांड।**

घनानंद प्रेम की मस्ती, विशेषतः वियोग शृंगार के कवि हैं। शुक्ल जी के अनुसार "प्रेम-मार्ग का एक ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा ज़बाँदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।"

वे प्रेम के गंभीर कवि हैं। वियोग में सच्चा प्रेमी जो वेदना सहता है, उसके चित्त में जो विभिन्न तरंगें उठती हैं, उनका चित्रण घनानंद ने किया है। घनानंद वियोग-दशा का चित्रण करते समय अलंकारों, रूढ़ियों का सहारा लेने नहीं दौड़ते, वे बाह्य चेष्टाओं पर भी कम ध्यान देते हैं। वे आखों में उजाड़ बसे रहने की बात कहते हैं –

उजरनि बसी है हमारी अँखियानि देखो

शुक्ल जी ने देखा था कि घनानंद ने प्रेम की अनिर्वचनीयता की व्यंजना विरोध मूलक वैचित्र्य की प्रवृत्ति के आधार पर की है, जैसे –

झूठ की सचाई छाक्यो, त्यो हित कचाई पाक्यों,
ढकी उघरति है, खोयबो लहत हैं।

घनानंद पर सूफ़ियों का प्रभाव भी देखा जाता है –

कान्ह परे बहुतायत में इकलैन की बेदन जानो कहा तुम

घनानंद पढ़े-लिखे काव्य-कला मर्मज्ञ कवि थे। फ़ारसी अवश्य जानते रहे होंगे। उनकी काव्य पंक्तियों में संगीतात्मकता है जैसे, इस पंक्ति में मृदंग की ध्वनि –

आनंद निधान सुखदानि दुखियान दै।

आलम (18वीं शताब्दी)

आलम का काव्य ही नहीं जीवन भी स्वच्छंद एवं मुक्त था। ये ब्राह्मण थे, पर शेख नामक रंगरेजिन से विवाह कर लिया। शेख रंगरेजिन स्वयं सुकवयित्री थी और इनसे आलम का प्रेम कविता के कारण हुआ। शेख की काव्य चातुरी और वाग्विदग्धता के विषय में अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। कवि आलम औरंगज़ेब के पुत्र मुअज़्ज़म के आश्रय में रहते थे। उनकी कविताओं के संग्रह का नाम **आलम केलि** है। उसमें आलम के साथ शेख के भी कवित्त हैं। मध्य युग में कला के क्षेत्र में किसी दंपति में इतनी एकमेकता कम दिखाई पड़ती है।

आलम की कविता के उत्कर्ष का आधार सीधे जीवन से स्थितियाँ उतारकर उनकी मार्मिक योजना कर देने में है। वे प्रायः काव्य के क्षेत्र में प्रचलित रूढ़ियों का सहारा नहीं लेते। जिस प्रकार वे जीवन में व्यर्थ बोझ उतार फेंक सके थे, उसी प्रकार काव्य में वे केवल सार्थक वक्तव्य के सहारे मार्मिकता पैदा कर सकते थे –

जा थल कीनें बिहार अनेकन ता थल काँकरी बैठि चुन्यो करैं।
जा रसना सौं करी बहुबातन ता रसनासों चरित्र गुन्यो करैं।

बोधा (18वीं शताब्दी)

बोधा राजापुर ज़िला बाँदा के रहने वाले थे। 18वीं शती के उत्तरार्ध और 19वीं शती के प्रारंभिक काल में ये विद्यमान थे। इन्होंने अपने जीवन में प्रेम और विरह का दंड और सुख भोगा था जो इनकी कविता में प्रकट है। कहते हैं कि पन्ना दरबार की सुभान या सुबहान नामक नर्तकी से इन्हें प्रेम था और **विरहबारीश** उसी से संबंधित है। **विरहबारीश** के अतिरिक्त इनकी एक रचना **इश्कनामा** मिलती है।

बोधा रसोन्मत्त कवि थे। 'प्रेम पीर' की व्यंजना इनके काव्य में भी मिलती है। ये मन की उमंग पर कविता करते थे और मन की बात कहने में चूकते नहीं थे। इसलिए इनकी कविता में कहीं-कहीं ऐसी पंक्तियाँ भी मिलती हैं जो इनका अक्खड़पन और अनंत तेजस्वी स्वभाव प्रकट करती हैं। इसके साथ ही साथ वे दरबारी कवियों के चरित्र के भिन्न और विपरीत कवि स्वभाव को भी प्रकट करती हैं –

दाता कहा सूर कहा सुंदर सुजान कहा
आपको न चाहै ताके बाप को न चाहिए।

प्रेम मन की कितनी स्थितियों का समुच्चय है, इसे बोधा ने इस सवैये में व्यक्त किया है –

कबहूँ मिलिबो कबहूँ मिलिबो यह धीरज ही मैं धरैबो करै,
उर ते कढ़ि आवै गरै ते फिरै मन की मन ही मैं सिरैबो करै।
कवि बोधा न चाउ सिरी कबहूँ नितही हरवा सो हिरैबो करै,
सहते न बनै कहते न बनै मन ही मन पीर पिरैबौ करै।

ठाकुर (1774-1823 ई.)

ठाकुर के पूर्वज काकोरी (अवध) के निवासी थे। इनका जन्म ओरछा में हुआ। इनके बारे में प्रसिद्ध है कि सामंत हिम्मत बहादुर के अपमान करने पर इन्होंने उनकी सभा में ही म्यान से तलवार निकाल ली थी और यह कवित्त पढ़ा था –

सेवक सिपाही हम उन रजपूतन के
दान जुद्ध जुरिबे में नेकु जे न मुरके।
नीति देनवारे हैं मही के महिपालन को,
हिये के विसुद्ध हैं, सनेही साँचे उर के।

ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफ़न के,
जलिम दमाद है अदानियाँ ससुर के।
चोजिन के चोजी महा, मौजिन के महाराज,
हम कविराज हैं, वे चाकर चतुर के।

ठाकुर कविता को हृदय की सच्ची उमंग की अनुभूति मानते थे। इसीलिए उन्होंने लिखा कि मीन, मृग, खंजन जैसे उपमानों का प्रयोग सीख लेने से कविता नहीं आती। उनका कहना था कि कविता की बात बहुत बड़ी होती है, लोग सभी के बीच कविता ऐसे गिराते हैं मानो ढेला। लोगों ने कविता करना खेल समझ रखा है –

ढेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच लोगन
कवित्त कीन्हों खेल करि जान्यो है।

ठाकुर का तेवर अत्यंत मानवीय, करुण, कोमल, सूक्ष्म एवं संवेदनशील है। ठाकुर रीति काल के उन दुर्लभ कवियों में से हैं जिनकी प्रेम की अनुभूति आधुनिक हैं –

वा निरमोहिनी रूप की रासि जऊ उर हेतु न ठानति ह्वै है।
बारहिं बार बिलोकि घरी घरी सूरति तौ पहिचानति ह्वै है।
ठाकुर या मन की परतीति है जो पै सनेह न मानति ह्वै है।
आवत है नित मेरे लिए इतनो तो विसेष कै जानति ह्वै है।

प्रकृति के प्रेम के रंग में डूबकर स्वयं राधा कृष्ण के प्रेम का प्रतीक बन जाने का यह चित्रण कलाकारी नहीं, चराचर में व्याप्त प्रेम की सत्ता की भावना से संभव हुआ –

सखी कारी घटा बरसे बरसाने पै गोरी घटा नंदगाँव पै री।

गुरु गोविंद सिंह (1666-1708 ई.)

गुरु गोविंद सिंह का व्यक्तित्व बहुआयामी था। वे मध्यकालीन सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना के प्रतीक थे। वे योद्धा, संत, राजनीतिक, कवि, प्रशासक सब कुछ थे।

गुरु गोविंद सिंह द्वारा रचित अनेक ग्रंथ बताए जाते हैं। इनकी रचनाओं के संग्रह का नाम **दशम ग्रंथ** है। इसमें 16 रचनाएँ संकलित हैं। इन्होंने पंजाबी, फ़ारसी और हिंदी (ब्रजभाषा) में काव्य रचना की है। इनका संप्रदाय देखते हुए इन्हें निर्गुण कवि होना चाहिए, किंतु इन्होंने देवी-देवताओं और सगुण रूप से संबंधित रचनाएँ भी की हैं। **चंडीचरित्र** इनकी विशिष्ट साहित्यिक रचना है। इसकी शैली ओज़स्विनी है। गुरु जी

की रचनाओं में वीर रस प्रधान है, यद्यपि इनकी मुख्य भूमि भक्ति है। **चौबीस अवतार** नामक रचना में शृंगार का भी पर्याप्त रंग दिखलाई पड़ता है। गुरु जी काव्यरीति के मर्मज्ञ थे। रीति काल में इनका व्यक्तित्व और कृतित्व अनुपम है। हिंदी में भक्तजनों का भक्ति काव्य तो प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, किंतु वीरजनों द्वारा रचित वीर काव्य नहीं मिलता। इस दृष्टि से गुरु गोविंद सिंह के काव्य का विशिष्ट महत्त्व है –

बीरबली सरदार दयैत सु क्रोध कै म्यान तै खड्ग निकारौ।
एक दयो तन चंडि प्रचंड कै दूसर के हरि के सिर झारौ।
चंडि सम्हारि तबे बलु धारि लयौ गहि नारि धरा पर मारौ।
ज्यों धुबिया सरिता-तट जाइकैं लै पट को पट साथ पछारौ।

रीति काल की सामान्य प्रवृत्तियाँ

रीति काल में अनेक प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। इस काल में भक्ति, नीति, वैराग्य, वीरता के अनेक अच्छे कवि हुए हैं।

रीति कालीन काव्य अधिकांशतः दरबारों में लिखा गया, अतः उनकी रुचि का ध्यान रखकर काव्य रचने वाले कवियों में शृंगारपरकता अनिवार्य थी। उधर भक्ति में धार्मिकता और लोकोन्मुखता का आवेश कम होने पर शृंगार बचा रहा। कवियों ने राधा-कृष्ण का नाम लेकर आश्रयदाताओं की शृंगार लीलाओं का वर्णन करना प्रारंभ कर दिया। "आगे के सुकवि रीझि हैं तो कविताई नाहिं तौ राधा-कन्हाई को सुमिरन को बहानो है" – रीति कालीन कवियों का आदर्श वाक्य था। शृंगार की प्रधानता के कारण कुछ लोग इसे शृंगार काल कहना उचित समझते हैं। किंतु इस काल की प्रधान साहित्यिक प्रवृत्ति रीति ही थी क्योंकि भूषण जैसे वीर रस के कवि ने भी रीतिग्रंथ की रचना की है। अतः रीति में वीर रस के कवि भूषण आ जाते हैं। शृंगार कहने से ऐसे कवि छूटकर अलग जा पड़ते हैं।

इस काल में कहने को यद्यपि कुछ प्रबंध काव्य जैसे – केशवदास का **वीरसिंह देवजू चरित** भी लिखे गए, किंतु प्रधानता मुक्तक की रही। इस काल के प्रबंध काव्य वस्तुतः आदि काल की परंपरा का निर्वाह मात्र हैं। कवित्त, सवैया, दोहा, कुंडलियाँ – इस काल के बहु प्रयुक्त छंद हैं। इस काल की भाषा ब्रजभाषा थी। ब्रजभाषा का रूप यद्यपि सभी कवियों के यहाँ व्यवस्थित नहीं मिलता, किंतु मतिराम, पद्माकर में वह पर्याप्त

व्यवस्थित है। विषयवस्तु की दृष्टि से इस काल की कविता बहुत सीमित है। प्रधानतः शृंगार और उसमें भी नायिका भेद ही मिलता है। किंतु रीतिपरक सूक्तियाँ भी दिखलाई पड़ती हैं। रहीम, वृंद, गिरधर की नीतिपरक रचनाएँ बहुत लोकप्रिय रहीं। इसी प्रकार भक्ति की रचनाएँ भी दिखलाई पड़ती हैं।

रीति काल में काव्य-विवेचन काव्य रचना का निमित्त मात्र है। इससे काव्यशास्त्र का विकास नहीं हुआ। अतः रीति काल के तथाकथित आचार्यों द्वारा हिंदी के काव्यशास्त्र की नींव नहीं पड़ी। उस समय गद्य का विकास नहीं हुआ था। कदाचित गद्य का अभाव वास्तविक काव्यांग निरूपण न हो पाने का कारण है।

इस काल में सरस मनोरम मुक्तक प्रभूत संख्या में लिखे गए। इस काल की कविता की प्रधान प्रवृत्ति किसी भी दार्शनिक विचारधारा से मुक्त है, इसीलिए कुछ लोग उसे 'शुद्ध साहित्य' या 'शुद्ध काव्य' भी कहना उचित समझते हैं। रीति कालीन मुक्तकों की लोकप्रियता का ही यह प्रमाण है कि जिस प्रकार संस्कृत के सुभाषितों का संकलन होता था, उसी प्रकार रीति कालीन मुक्तकों के संकलन ग्रंथों की भी परंपरा चली। कालिदास (रीति कालीन कवि) ने **कालिदास हजारा** में और भारतेंदु ने **सुंदरी तिलक** में रीति कालीन मुक्तकों का संकलन किया है।

रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य प्रधानतः दरबारी काव्य है। इस काव्य पर आश्रयदाताओं की रुचियों और कवियों की आश्रयदाता से पुरस्कार पाने की आशा का प्रभाव है। यह प्रधानतः मुक्तक काव्य है।

इस काव्य की रचना में काव्यरीति का पूरा प्रभाव है, फिर भी यह काव्य केवल आश्रयदाता सामंतों की प्रेम लीलाओं का ही चित्रण नहीं करता बल्कि सामान्य गृहस्थ के भी जीवन का चित्रण करता है।

इस काव्य की भाषा ब्रजभाषा है। कवित्त, सवैये इसके प्रधान छंद हैं। बिहारी ने अपनी कविताओं का जौहर दोहों में प्रकट किया है।

रीतिमुक्त कवि दरबारी कवि नहीं हैं। घनानंद जैसे कवि ने दरबार छोड़कर प्रेम की कविताएँ लिखीं हैं। इन कवियों ने सहज और स्वाभाविक प्रेम का चित्रण, विशेषतः विरह की मार्मिक मनोभूमियों का चित्रण किया है। इसीलिए इनकी कविताओं में सूफ़ियों जैसी विरह की उत्कटता मिलती है।

रीति काल की प्रमुख काव्य प्रवृत्ति अर्थात काव्यरीति को ध्यान में रखकर नायिका भेद आदि का वर्णन तो आगे बहुत दिनों तक चलता रहा। अभी भी वह पूरा समाप्त नहीं हुआ है। बात यह है कि इस प्रकार के मुक्तकों की रचना और श्रवण का चाव हिंदी भाषी जनजीवन में अपनी गहरी जड़ें जमा चुका था, इसीलिए आधुनिक युग के प्रवर्तन के उपरांत भी ब्रजभाषा काव्य-परंपरा पूरे जोश के साथ बहुत दिनों तक प्रवाहित होती रही।

किंतु इस विषय में एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है। सारा ब्रजभाषा काव्य काव्यरीति धारा में बद्ध नहीं है। उदाहरण के लिए भारतेंदु ब्रजभाषा का उपयोग रीतिवादी परंपरा में भी करते हैं और आधुनिकता-बोधक रचनाओं में भी। ब्रजभाषा में रीतिवादी काव्य की उल्लेखनीय परंपरा बीसवीं शताब्दी तक सत्यनारायण 'कविरत्न' (1859-1918 ई.) और बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर बी.ए. (1866-1932 ई.) तक मिलती है।

अध्याय 4

आधुनिक काल (1850 –)

खड़ी बोली गद्य का विकास

आधुनिक काल को गद्य युग कहा जाता है। इसका कारण यह है कि आधुनिक काल में गद्य का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। विचारों को प्रकट करने के लिए पद्य की अपेक्षा गद्य अधिक समर्थ माध्यम होता है।

मुगल काल के अंतिम दौर में खड़ी-बोली गद्य में फ़ारसी का प्रयोग बढ़ने लगा था। जैसे आजकल लोग अपनी सामाजिक मर्यादा का प्रदर्शन करने के लिए हिंदी बोलते समय अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग करते हैं, वैसे ही उस काल में फ़ारसी का प्रयोग करने लगे होंगे। इससे स्वाभाविक खड़ी बोली की भाषा की उर्दू शैली का जन्म हुआ।

1803 ई. में फोर्ट विलियम कॉलेज कोलकाता के हिंदी-उर्दू अध्यापक जान गिल-क्राइस्ट ने हिंदी और उर्दू दोनों में गद्य पुस्तकें तैयार कराईं। इसी कॉलेज के लल्लूलाल ने खड़ी बोली गद्य में **प्रेमसागर** और सदल मिश्र ने **नासिकेतोपाख्यान** लिखा। इसके दो वर्ष पूर्व मुंशी सदासुखलाल ने **ज्ञानोपदेश** की एक पुस्तक और उर्दू के प्रसिद्ध कवि इंशा अल्लाखाँ ने **रानी केतकी की कहानी** लिखी थी। यह सारा लेखन 1803 ई. के आस-पास हुआ। आधुनिक खड़ी बोली के ये महानुभाव प्रारंभिक लेखक हैं। इनका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है –

मुंशी सदासुख लाल 'नियाज़' (1746-1824 ई.)

ये दिल्ली के रहने वाले थे और उर्दू-फ़ारसी के भी लेखक थे। इन्होंने **सुखसागर** लिखा था और एक ज्ञानोपदेश वाली पुस्तक जिसका उल्लेख हो चुका है। इनकी भाषा सहज

एवं प्रवाहमयी है। कथा वाचकों, पंडितों और साधु-संतों में प्रचलित शैली का प्रभाव इनकी खड़ी बोली के गद्य पर है, किंतु इससे भाषा की सहजता पर आँच नहीं आई है।

इंशाअल्ला खाँ (1756-1817 ई.)

ये उर्दू के प्रसिद्ध कवि थे। इन्होंने **उदयभान चरित** या **रानी केतकी की कहानी** खड़ी बोली गद्य में लिखी। इनकी भाषा काफी अलंकृत, चुटीली और मुहावरेदार है। बात यह है कि उन दिनों कहानी कहने या किस्सागोई की कला काफी प्रचलित थी। इंशाअल्ला खाँ के गद्य पर इस किस्सागोई की शैली का प्रभाव है। गद्य के बीच-बीच में पद्य जैसी तुकबंदी उन दिनों के उर्दू गद्य-लेखन में मिलती है। वह लल्लूलाल के यहाँ भी है और इंशाअल्ला खाँ के यहाँ भी। उदाहरण के लिए यह पंक्ति –

यह कैसी चाहत जिसमें लहू बरसने लगा और अच्छी बातों को जी तरसने लगा।

लल्लूलाल जी (1763-1825 ई.)

इन्होंने खड़ी बोली गद्य में **प्रेमसागर** लिखा। अरबी-फ़ारसी के जो शब्द खड़ी बोली में घुलमिल गए, उनको भी इन्होंने अपने गद्य में स्वीकार नहीं किया। इनकी भाषा के विषय में शुक्ल जी का वक्तव्य सटीक है – "भाषा की सजावट भी **प्रेमसागर** में पूरी है। विरामों पर तुकबंदी के अतिरिक्त वर्णनों में वाक्य भी बड़े-बड़े आए हैं और अनुप्रास भी यत्र-तत्र हैं। मुहावरों का प्रयोग कम है।"

सदलमिश्र (19वीं शताब्दी का प्रारंभ)

इन्होंने लल्लूलाल जी की तरह फोर्ट विलियम कॉलेज के लिए खड़ी बोली गद्य की पुस्तक तैयार की। इनकी पुस्तक का नाम है **नासिकेतोपाख्यान**। इनकी भाषा में पूरबीपन है। ये आरा (बिहार) के रहने वाले थे। इनकी भाषा व्यवहारोपयोगी है।

खड़ी बोली गद्य के इन चारों प्रारंभिक लेखकों में मुंशी सदासुखलाल 'नियाज़' का गद्य अधिक व्यवस्थित और व्यवहारोपयोगी है। रामप्रसाद निरंजनी के **भाषा योग वाशिष्ठ** की ही परंपरा में उनका गद्य है।

गद्य का विकास करने में ईसाई मिशनरियों का भी बहुत बड़ा हाथ है। गद्य के विकास में छापाखानों (प्रेस) की बहुत बड़ी भूमिका है। छापाखानों के बिना इतनी

अधिक संख्या में पुस्तकें मुद्रित नहीं हो सकती थीं। पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशित होने की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

अंग्रेज़ी की शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ हिंदी, उर्दू की भी पढ़ाई की व्यवस्था सरकार ने की। इसके लिए पुस्तकों के प्रकाशन की भी व्यवस्था हुई। 1833 ई. के आस-पास आगरा में स्कूल बुक सोसाइटी की स्थापना हुई, जिसने **कथासार** नामक पुस्तक प्रकाशित कराई। 1840 ई. में **भूगोलसार** और 1847 ई. में **रसायन प्रकाश** छपा। इस तरह हिंदी गद्य में पाठ्यपुस्तकों का प्रकाशन प्रारंभ हुआ।

विकास विरोध के बिना नहीं होता। यह बात हिंदी गद्य के विकास पर भी लागू होती है। ईसाई धर्म के प्रचार का प्रभाव हिंदू जनता पर पड़ रहा था। ऐसी स्थिति में हिंदू जनता को उस प्रभाव से बचाने का प्रयास होना अनिवार्य था। इस तरह हिंदी गद्य में धार्मिक खंडन-मंडन की प्रवृत्ति प्रारंभ हुई। बंगाल में राजा राममोहन राय इस कार्य में आगे बढ़े। 1815 ई. में उन्होंने **वेदांतसूत्र** का हिंदी गद्य में अनुवाद प्रकाशित कराया। 1829 ई. में उन्होंने **बंगदूत** नामक पत्र भी हिंदी में निकाला। इसके 3 वर्ष पहले 1826 ई. में कानपुर के पं. जुगल किशोर ने हिंदी का पहला समाचार पत्र **उदंत मार्त्तंड** कोलुकाता से निकाला। यह विचित्र संयोग था कि हिंदी के प्रारंभिक समाचार-पत्र हिंदी क्षेत्र से नहीं, उसके बाहर कोलकाता से निकले। यह भी ध्यान देने की बात है कि राजा राममोहन राय जैसे महान् देशभक्त और समाज-सुधारक ने हिंदी गद्य का अखिल भारतीय महत्त्व समझा। हिंदी के प्रथम समाचार-पत्र के गद्य का नमूना इस प्रकार है।

> **"यह उदंत मार्त्तंड अब पहिले-पहल हिंदुस्तानियों के हित के हेत जो आज तक किसी ने नहीं चलाया, पर अंग्रेज़ी ओ फ़ारसी ओ बंगला में जो समाचार का कागज़ छपता है उसका सुख उन बोलियों के जानने और पढ़ने वालों को ही होता है।"**

समाचार-पत्रों की भाषा यथासंभव रूढ़ियों से मुक्त व्यवहारोपयोगी होती है।

1845 ई. में राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' ने काशी से **बनारस अखबार** निकाला। इसकी लिपि देवनागरी थी लेकिन भाषा उर्दू की ओर झुकी हुई। बनारस से ही 1850 ई. में **सुधाकर** निकला। राजा लक्ष्मण सिंह ने 1860 ई. में आगरा से **प्रजा हितैषी** नामक पत्र निकाला। 1863 ई. में आगरा से **लोक मित्र** निकला। 1867 ई. में नवीन चंद्र ने **ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका** का प्रकाशन प्रारंभ किया। कहने का आशय यह है कि हिंदी

क्षेत्र में वैचारिक विविधता का रूप पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से सामने आने लगा। इससे हिंदी जीवन-व्यवहार की भाषा के रूप में तेज़ी से विकसित होने लगी।

1837 ई. में तत्कालीन संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) के सब दफ़्तरों की भाषा उर्दू कर दी गई। इसका प्रभाव यह पड़ा कि शिक्षित होने का व्यवहार में अर्थ हो गया उर्दू दाँ होना। हिंदी केवल धर्म-कथा, पुराणों को सुनने-सुनाने और स्त्रियों के लिए व्रत-त्योहार की भाषा बनकर रह गई। उर्दू के समर्थन में गार्सा द तासी और सर सैयद अहमद ने बहुत प्रयास किया। हिंदी के लिए उद्योग करने वालों में फ्रेडरिक पिंकाट का नाम सदैव स्मरणीय रहेगा। शिक्षा विभाग के अधिकारी राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' प्रारंभ में हिंदी के समर्थक थे, किंतु बाद में उर्दू के पक्षधर हो गए। इस युग में राजा लक्ष्मण सिंह ने **अभिज्ञान शाकुंतलं** और **रघुवंश** के गद्य अनुवाद के माध्यम से हिंदी का प्रांजल रूप सामने लाकर उसका पक्ष सुदृढ़ किया। पंजाब के श्रद्धाराम फुल्लौरी ने 1863 ई. के आस-पास अपने पांडित्यपूर्ण एवं निर्भीक व्याख्यानों और लेखों से हिंदी को बहुत आगे बढ़ाया। इनका **भाग्यवती** (1867 ई.) नामक उपन्यास हिंदी के प्रथम उपन्यास के रूप में प्रसिद्ध है।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने 1875 ई. में आर्यसमाज की स्थापना की। वे इसके पूर्व से ही घूम-घूम कर वैदिक धर्म का प्रचार करते थे। उन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ **सत्यार्थप्रकाश** अपने समय को देखते हुए परिमार्जित हिंदी गद्य में लिखा। स्वामी जी गुजराती भाषी थे। इसके पहले हम देख चुके हैं कि बंगाल में राजा राममोहन राय ने हिंदी गद्य का उपयोग किया था और इसी प्रकार पश्चिमोत्तर भारत के गुजराती भाषी स्वामी दयानंद सरस्वती ने हिंदी गद्य को अपने मत-प्रचार का साधन बनाया।

इस प्रकार खड़ी बोली हिंदी गद्य विकसित हो रहा था। यह विकास नई चेतना के प्रसार का माध्यम भी था। इस चेतना का दबाव केवल गद्य नहीं पूरे साहित्य पर पड़ना अनिवार्य था। हिंदी साहित्य में इस नई चेतना का प्रवेश भारतेंदु युग में हुआ।

भारतेंदु युगीन साहित्य (1850-1900 ई.)

भारतेंदु हरिश्चंद्र को हिंदी साहित्य में आधुनिकता का प्रवर्तक साहित्यकार माना जाता है। इसी नई चेतना और आधुनिकता से युक्त होने के कारण हिंदी साहित्य रीतिबद्धता

से मुक्त हुआ। लेकिन हमें यह भी जान लेना चाहिए कि वे कौन-सी परिस्थितियाँ थीं जिनके कारण आधुनिकता का जन्म हुआ। इनका ऐतिहासिक-सामाजिक आधार क्या था?

अंग्रेज़ों का वर्चस्व भारत में 18वीं शती के उत्तरार्द्ध से बढ़ गया। उन्होंने भारत के उद्योगों को नष्ट कर दिया। ज़मीन को अपने कब्ज़े में करके किसानों पर लगान का बोझ बहुत बढ़ा दिया। माल को ढोने और सेना को सुदूर प्रदेशों तक जल्दी पहुँचाने के लिए रेल-व्यवस्था कायम की। जहाँ-जहाँ स्वयं अधिकार नहीं कर सके, देशी नरेशों से समझौता किया और उनके द्वारा किए जाने वाले शोषण का समर्थन किया। अपनी लुटेरी व्यापार नीति से भारतीय अर्थ-व्यवस्था के विकास को रोका। इसका परिणाम 1857 ई. का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम था। यह संग्राम सेना के अफ़सरों का विद्रोह नहीं था, सामंतों का विद्रोह नहीं था। इसमें किसानों ने हिस्सा लिया था। गैर-सैनिक किसानों ने भी इसमें लड़ाई की। इसका रूप असांप्रदायिक था। विद्रोहियों ने भारत में अंग्रेज़ों की लुटेरी नीति को बहुत अच्छी तरह समझा था। बहादुर शाह के नाम से जो इश्तहार जारी किया गया था उसमें ज़मीदारों, व्यापारियों, सरकारी नौकरों, कारीगरों आदि की स्थिति अलग-अलग बयान की गई है। इसमें व्यापारियों से कहा गया है कि अंग्रेज़ों ने नील, कपड़ा और जहाज़ों में भेजी जाने वाली अन्य वस्तुओं के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित किया है। केवल मामूली चीज़ों का व्यापार यहाँ के लोगों के हाथ में रहने दिया है। लेकिन इसमें भी मुनाफ़ा कमाने की बहुत-सी तरकीबें निकाल ली गई हैं। चुंगी वगैरह के ज़रिए व्यापारियों पर वे भारी टैक्स लगाते हैं।

भारतेंदु और उनके मंडल के लेखकों पर इन स्थितियों का प्रभाव है। भारतेंदु को नायिका-भेद, नख-शिख वर्णन, अलंकार आदि कम आकृष्ट करते हैं। वे देश की दशा पर द्रवित होते हैं। इसलिए उनके साहित्य में नई विषयवस्तु जुड़ गई है। यह नई विषयवस्तु देशप्रेम है जो देश के यथार्थ-बोध पर आधारित है। इसमें भाषा, समाज सुधार, पाखंड-उद्घाटन आदि बहुत कुछ हैं, लेकिन इसकी मुख्य विषयवस्तु आर्थिक है। वे आर्थिक विषमता का वर्णन-चित्रण जिस स्वर से करते हैं वह प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के नेताओं के स्वर से बहुत मिलता-जुलता है।

भारतेंदु ने आर्थिक विषमता, स्वाधीनता, नारी-शिक्षा, धार्मिक पाखंड, हिंदी भाषा — सब पर अपने विचार प्रकट किए। उनका व्यक्तित्व आंदोलनकारी था। वे सच्चे अर्थ में

करुणावान थे। व्यक्ति नहीं संस्था थे, इसीलिए वे नई चेतना के प्रतिनिधि या प्रतीक साहित्यकार बन सके।

19वीं शती में पूरे देश में नवजागरण की लहर दौड़ गई। इस नवजागरण पर देशी परिस्थितियों और यूरोप से संपर्क का प्रभाव है। हिंदी क्षेत्र के नवजागरण पर मुख्यतः अंग्रेज़ों के शोषण, 1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम और राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, रामकृष्ण परमहंस आदि का प्रभाव है। भारतेंदु इस नवजागरण के अग्रदूत थे। उनके समानधर्मा साहित्यकारों की रचनाओं से हिंदी साहित्य में आधुनिकता का प्रवर्तन हुआ। इस आधुनिकता के प्रधानतः तीन लक्षण हैं –

1. साहित्य अपनी संवेदना आस-पास के जीवन से ग्रहण करने लगा।
2. इस युग के साहित्यकारों ने आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि विषमताओं का उद्घाटन किया।
3. रचनाकार अपने साहित्य से इस विषमता को पाटने का प्रयास करने लगे इसलिए आधुनिक साहित्य आनंद के साथ कर्म की प्रेरणा भी देने लगा। साहित्य सामाजिक चेतना से युक्त हो गया। रीतिवादी साहित्य से आधुनिक साहित्य की यही विशेषता थी – जिसका प्रवर्तन भारतेंदु ने किया।

जहाँ पहले जीवन के विविध क्षेत्रों की ओर रचना-दृष्टि नहीं जाती थी, वहाँ जाने लगी। भारतेंदु-युग में अनेक नई गद्य विधाओं का भी प्रारंभ हुआ। पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से सामाजिक विषयों पर विचारों का प्रसार हुआ। संपादकीय और निबंध हिंदी साहित्य में नई वस्तु थी।

भारतेंदु युग के प्रमुख रचनाकार

भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885 ई.)

जीवन के अल्प काल में ही भारतेंदु ने साहित्य की बहुत बड़ी सेवा की। उनकी रचनाओं की संख्या काफी है। उन्होंने साहित्य की विविध विधाओं को समृद्ध किया और अनेक विधाओं का प्रवर्तन किया। वे हिंदी साहित्य में आधुनिक युग के प्रवर्तक हुए, यह तो आप देख चुके हैं। 18 वर्ष की आयु में ही उन्होंने बँगला से **विद्यासुंदर** नाटक का हिंदी में अनुवाद किया। 1868 ई. में उन्होंने **कविवचन सुधा** नामक पत्रिका निकाली। इसमें

साहित्यिक रचनाएँ तो होती ही थीं, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विचार और टिप्पणियाँ भी होती थीं। इसी पत्रिका में उन्होंने विलायती कपड़ों के बहिष्कार की अपील और ग्राम-गीतों के संकलन की योजना प्रकाशित की थी। 1873 ई. में उन्होंने **हरिश्चंद्र मैगजीन** नामक मासिक पत्रिका निकाली। इस पत्रिका का प्रकाशन कितना महत्त्वपूर्ण है – यह इसी से समझा जा सकता है कि स्वयं भारतेंदु के अनुसार – 'हिंदी नई चाल में ढली' (1873 ई.)। बाद में इस पत्रिका का नाम उन्होंने **हरिश्चंद्र चंद्रिका** कर दिया। 1874 ई. में उन्होंने स्त्री-शिक्षा के लिए **बालाबोधिनी** नामक पत्रिका निकाली। भारतेंदु ने सबसे अधिक संख्या में नाटक लिखे और अनुवाद किया। उनके मौलिक नाटक इस प्रकार हैं – **वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चंद्रावली, विषस्य विषमौषधम्, भारत दुर्दशा, नील देवी, अंधेर नगरी, प्रेम जोगनी और सती प्रताप**।

अनूदित नाटक – **विद्यासुंदर, पाखंड-बिडंबन, धनंजय-विजय, कर्पूरमंजरी, मुद्राराक्षस, सत्य हरिश्चंद्र** और **भारत-जननी**।

बादशाह दर्पण, कश्मीर कुसुम उनके इतिहास ग्रंथ हैं। **कुछ आप-बीती कुछ जग-बीती** कहानी है। कविताएँ भारतेंदु ने ब्रजभाषा में लिखी, जिनका उल्लेख यथास्थान किया गया है। भारतेंदु ने यात्रा-वर्णन भी लिखा है। उन्होंने सुदूर देहाती क्षेत्रों की यात्रा बैलगाड़ी से की। कहते हैं कि 1865 ई. में उन्होंने जगन्नाथ पुरी की जो यात्रा की उसका उनके जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा और उनका परिचय बंगाल के नए साहित्यिक आंदोलन से हुआ।

भारतेंदु हरिश्चंद्र अत्यंत जीवंत एवं मित्र परायण व्यक्ति थे। उनकी ज़िंदादिली की सब कहानियाँ साहित्य क्षेत्र में ही विदित नहीं है, अनेक कहानियाँ काशी के लोक जीवन में भी प्रचलित हैं। उन्होंने अपने जैसे समानधर्मा साहित्यिक एकत्र किए, उन्हें प्रोत्साहित किया और उनकी रचनाएँ छापीं। इसे भारतेंदु मंडल कहा जाता है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र काशी के अत्यंत समृद्ध परिवार में पैदा हुए थे। कहते हैं कि स्वयं काशी नरेश इनके यहाँ आया करते थे। इनका जीवन राजसी वैभव का था। किंतु भारतेंदु ने धन की सदैव उपेक्षा की। वे महान दानी थे। उनका अंतिम समय अभावग्रस्त रहा। भारतेंदु महान साहित्यकार ही नहीं थे, महान मानव भी थे।

भारतेंदु हरिश्चंद्र राष्ट्रीय विचारों के देशप्रेमी व्यक्ति थे। उनका साहित्य साम्राज्यवाद का विरोध करता है, देश की विषमता का चित्रण करता है, उसकी पीड़ा व्यक्त करता है

और उस विषमता को दूर करने की प्रेरणा देता है। इन्हीं गुणों के कारण आधुनिक साहित्य के प्रारंभिक दौर को **भारतेंदु युग** कहा जाता है। परवर्ती हिंदी साहित्य का विकास जिस-जिस दिशा में हुआ उस पर सबसे पहले भारतेंदु और उनके सहयोगी रचनाकार चले थे।

प्रताप नारायण मिश्र (1856-1894 ई.)

प्रताप नारायण मिश्र अत्यंत विनोदी जीव थे। वे **ब्राह्मण** नामक पत्रिका निकालते थे। उनका मनमौजीपन उनकी रचनाओं, विशेषतः निबंधों में दिखाई पड़ता है। उन्होंने कुछ गंभीर निबंध भी लिखे हैं। उन्होंने **कलिकौतुक रूपक, संगीत शाकुंतल, भारत दुर्दशा, हठी हम्मीर, गोसंकट, कलिप्रभाव, जुआरी-खुआरी** नाटक लिखे। उन्होंने दैनिक जीवन की घटनाओं पर और नए फैशन पर अनेक कविताएँ लिखीं। उनकी कविताओं का महत्त्वपूर्ण अंश वह है, जिसमें उन्होंने आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक समस्याओं का नए बोध के साथ चित्रण किया है। कविताओं के लिए आल्हा, लावनी जैसी लोक प्रचलित काव्य शैलियों का उपयोग भी किया है।

बालकृष्ण भट्ट (1844-1914 ई.)

भट्ट जी **हिंदी प्रदीप** नामक पत्र निकालते थे। वे निबंधकार, समीक्षक और नाटककार थे। उन्होंने **कलिराज की सभा, रेल का विकट खेल, बाल विवाह, चंद्रसेन** आदि नाटकों की रचना की। भट्ट जी ने कुछ बँगला नाटकों का हिंदी में अनुवाद भी किया।

उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' (1855-1922 ई.)

प्रेमघन काव्य और जीवन दोनों क्षेत्रों में भारतेंदु को अपना आदर्श मानते थे। वे कलात्मक एवं अलंकृत गद्य लिखते थे। **आनंद कादंबिनी** नाम की पत्रिका निकालते थे। बाद में **नागरी नीरद** नामक पत्र भी निकाला। प्रेमघन जी निबंधकार, नाटककार, कवि एवं समीक्षक थे। **भारत सौभाग्य, प्रयाग रामागमन** उनके प्रसिद्ध नाटक हैं। प्रेमघन ने **जीर्ण जनपद** नामक एक काव्य लिखा है जिसमें ग्रामीण जीवन का यथार्थवादी चित्रण है।

भारतेंदु युग के अन्य उल्लेखनीय साहित्यकारों में लाला श्रीनिवास दास (1851-1887 ई.), ठाकुर जगमोहन सिंह (1857-1899 ई.), पं. राधाचरण गोस्वामी (1858-1925 ई.) आदि प्रमुख हैं।

भारतेंदु युगीन गद्य

भारतेंदु युगीन गद्य में नई विधाओं का प्रारंभ या नवीनीकरण हुआ। इनमें निबंध प्रमुख है। भारतेंदु युग के साहित्यकार जीवंत व्यक्तित्व वाले थे। उनके व्यक्तित्व की छाप सबसे ज़्यादा निबंधों में है। निबंधों में व्यंग्य-विनोद, हास-परिहास भरपूर मात्रा में मिलता है। इनकी भाषा गंभीर विषयों पर लिखते समय भी चुलबुली और क्षेत्रीय प्रयोगों से युक्त होती है। पं. प्रताप नारायण मिश्र (**बात, समझदार की मौत है** आदि), राधाचरण गोस्वामी (**यमलोक की यात्रा**), भारतेंदु (**स्वर्ग में विचार सभा**), बालकृष्ण भट्ट (**आँख, नाक, कान** आदि) इस युग के प्रमुख निबंधकार हैं। इन निबंधों में अंग्रेज़ी और उर्दू शब्दों का प्रयोग धड़ल्ले से हुआ है।

भारतेंदु युग में प्राचीन नाटकों को नए रूप में ढाला गया। उन्हें नए युग की समस्याओं और यथार्थ से जोड़ा गया। भारतेंदु युग के नाटकों में कथनी और करनी के अंतर को प्रकट किया गया है, इसलिए वे धार्मिक, सामाजिक एवं शासकीय प्रतिष्ठानों पर प्रहार करते हैं।

इस युग में उपन्यास लेखन की ओर भी ध्यान दिया गया। श्रीनिवास दास ने **परीक्षा गुरु**, और बालकृष्ण भट्ट ने **सौ अजान एक सुजान** नामक उपन्यास लिखा। राधाकृष्ण दास ने **निस्सहाय हिंदू** नामक उपन्यास लिखा। लेकिन इस युग के सर्वाधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय उपन्यासकार बाबू देवकीनंदन खत्री हैं। इनके लिखे दो उपन्यास **चंद्रकांता** और **चंद्रकांता संतति** अत्यधिक प्रसिद्ध हुए। ये ऐयारी और तिलस्मी उपन्यास हैं। इनमें अभूतपूर्व रोचकता और लोकप्रियता है। किशोरीलाल गोस्वामी ने अधिक संख्या में उपन्यास लिखे जिनमें **आदर्श रमणी** और **लवंगलता** प्रमुख हैं।

भारतेंदु ने **कुछ आपबीती, कुछ जगबीती** नामक कहानी लिखनी शुरू की थी जिसे वे पूरा नहीं कर पाए। शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' ने **राजभोज का सपना** नाम की कहानी लिखी।

इसके अतिरिक्त भारतेंदु ने **कश्मीर कुसुम** और **बादशाह दर्पण** लिखकर इतिहास लेखन और जयदेव का जीवनवृत्त लिखकर जीवन-चरित लिखने की प्रवृत्ति का भी प्रारंभ किया।

भारतेंदु ने नाटक पर जो निबंध लिखा है उसे हिंदी आलोचना का प्रारंभ कह सकते हैं। इसके अतिरिक्त प्रेमघन ने श्रीनिवास दास के **संयोगिता स्वयंवर** पर समीक्षा लिखी।

भारतेंदु युग में हिंदी अपना रूप ग्रहण कर रही थी। इसीलिए भारतेंदु युग की रचनाओं की भाषा एक ओर अनगढ़ है, दूसरी ओर उसमें ऐसा खुलापन है जिसमें देशज, तद्भव, तत्सम और हिंदी में ग्रहण करने योग्य किसी भी भाषा के शब्द आ सकते हैं। इनकी भाषा में क्षेत्रीय रंग उल्लेखनीय हैं, विशेष रूप से भारतेंदु के नाटकों की भाषा में। इस काल की गद्य भाषा को हँसमुख कहा गया है।

भारतेंदु युगीन गद्य की प्रवृत्तियाँ

- भारतेंदु युगीन गद्य का उत्कृष्ट रूप नाटकों में मिलता है।
- भारतेंदु युगीन नाटकों के गद्य में खड़ी बोली गद्य के विविध रूप दिखलाई पड़ते हैं।
- यह गद्य जन-बोलियों से मिलता-जुलता है।
- भारतेंदु युग के निबंधों में गद्य का जीवंत रूप मिलता है। भारतेंदु युग में व्यक्तिपरक और ललित निबंध प्रभूत मात्रा में लिखे गए।
- इस युग के निबंधों में निबंधकारों का जीवंत व्यक्तित्व साफ झलकता है।
- भारतेंदु युग के निबंधों की भाषा में हिंदी खड़ी बोली के अनेक स्तरों और रूपों का उपयोग मिलता है।
- भारतेंदु युग में गद्य-लेखन के क्षेत्र में समीक्षा, उपन्यास, कहानी और इतिहास जैसी नवीन गद्य विधाओं का प्रवर्तन हुआ।
- इस युग के लेखकों ने गद्य में अनेक भाषाओं के शब्दों का खुलकर व्यवहार किया। इससे इनके गद्य में एक प्रकार का खुलापन आया।

भारतेंदु युगीन कविता

भारतेंदु युग की कविता में भी नए विषयों का प्रवेश हुआ। यद्यपि भारतेंदु युग के काव्य की भाषा पारंपरिक ब्रजभाषा ही है फिर भी उसका कथ्य आधुनिक है, उस ब्रजभाषा में भी गद्यात्मकता है।

भारतेंदु ने **प्रबोधिनी** जैसी कविता में देश की तत्कालीन समस्याओं से पाठकों को अवगत कराया है। उनकी ये काव्य-पंक्तियां द्रष्टव्य हैं –

अंगरेज-राज सुख-साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।।

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को शूल।।

भारतेंदु ने भक्तिपरक और रीति काव्य जैसी कविताएँ भी लिखी हैं तथा साथ ही साथ आधुनिक विचारों वाली कविताएँ भी। भारतेंदु ने लोक प्रचलित काव्य-रूपों में भी रचनाएँ कीं। उन्होंने अमीर खुसरो की तरह 'दो सखुने' और 'चना जोर गरम' जैसी शैलियों का भी प्रयोग किया।

भारतेंदु मंडल के अन्य प्रमुख कवि प्रेमघन ने तत्कालीन घटनाओं पर कविताएँ लिखीं। जैसे दादाभाई नौरोजी को काला कहे जाने पर उन्होंने अपना क्षोभ व्यक्त किया। प्रतापनारायण मिश्र की कविताओं में टैक्स, अकाल, महँगाई जैसे विषयों पर होली, फाग और लावनी जैसी जन प्रचलित काव्य शैलियों का प्रयोग किया गया है।

द्विवेदी युग (1900-1920 ई.)

भारतेंदु युग के उपरांत हिंदी साहित्य के इतिहास में जो काल खंड आता है उसे द्विवेदी युग कहते हैं। उसका कारण यह है कि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी इस युग के व्यवस्थापक साहित्यकार हैं। उन्होंने 1903 ई. में **सरस्वती** के संपादन का कार्यभार संभाला। **सरस्वती** के संपादन के माध्यम से उन्होंने खड़ी बोली काव्य भाषा और हिंदी साहित्य दोनों को व्यवस्थित करने का भारी उद्योग किया। वे कवियों और गद्यकारों की भाषा में एकरूपता लाकर खड़ी बोली को व्यवस्थित भी कर रहे थे, साहित्यकारों को

नए विषय भी सुझा रहे थे, उन्हें प्रोत्साहित कर रहे थे और उनकी आलोचना भी कर रहे थे। वे हिंदी भाषा-भाषियों को अन्य भाषाओं के साहित्य की गरिमा से परिचित करा रहे थे और अपने देश की अन्य भाषाओं के साहित्य से हिंदी-साहित्य का तालमेल भी बैठा रहे थे। उन्होंने साहित्य को 'ज्ञानराशि का संचित कोश' कहा। द्विवेदी युग ने प्रधानतः ज्ञानार्जन की ही साधना की।

भारतेंदु युग ने यद्यपि हिंदी साहित्य को नए विषयों से जोड़ दिया था। नई विधाओं का सूत्रपात और पुरानी विधाओं का नवीनीकरण किया था फिर भी काव्य भाषा के रूप में ब्रजभाषा ही प्रतिष्ठित रही। द्विवेदी युग में ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली का द्वंद्व उभरकर सामने आया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने दृढ़तापूर्वक खड़ी बोली का पक्ष लिया और उनके युग में ही खड़ी बोली काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने काव्य भाषा के रूप में ब्रजभाषा का ही विरोध नहीं किया, उन्होंने हिंदी काव्य को रीतिवाद से भी मुक्ति दिलाई। उन्होंने काव्य में दरबारीपन का घोर विरोध किया। इस विषय में उनके विचार आश्चर्यजनक रूप से आधुनिक थे। उन्होंने कविता के लिए अंत्यानुप्रास या तुक को आवश्यक नहीं माना और उर्दू शब्दों के समुचित प्रयोग को भाषा में स्थान दिया। उन्होंने विभक्तियों, विराम चिह्नों के प्रयोग एवं समानार्थक अनेक रूपों के व्यवहार से उत्पन्न अस्पष्टता को दूर करने का प्रयास भी किया।

इस युग में ज्ञान साधना पर बल है, संभवतः इसीलिए इस युग में गद्य की सर्वाधिक उल्लेखनीय विधा विचारात्मक निबंध है।

इस युग के साहित्य का परिचय इस प्रकार है –

निबंध

इस काल के निबंधकारों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधव प्रसाद मिश्र, बाबू बालमुकुंद गुप्त, श्यामसुंदर दास, चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' और अध्यापक पूर्णसिंह प्रमुख हैं। रामचंद्र शुक्ल के प्रारंभिक निबंध इसी दौर के हैं। उनका अत्यंत महत्त्वपूर्ण निबंध **कविता क्या है,** पहले पहल इसी काल (1909 ई.) में लिखा गया, यद्यपि इसका संशोधित एवं परिवर्धित रूप उन्होंने बाद में प्रकाशित कराया।

इस युग में गंभीर और ललित दोनों प्रकार के निबंध लिखे गए, किंतु विचारपरक निबंधों का महत्त्व अधिक है। महावीर प्रसाद द्विवेदी के निबंधों का तेवर प्रायः सर्वत्र नियामक और सुनियोजित है, चाहे वे **कवि और कविता** पर लिखें, चाहे **क्या हिंदी नाम की कोई भाषा ही नहीं** पर, उनके निबंध स्पष्ट होते थे। उनमें कलात्मकता की अपेक्षा अपनी बात को समझा-बुझाकर कहने की प्रवृत्ति अधिक है। विरोधी पक्ष का शमन करने के लिए वे विवादात्मक मुद्रा भी अपनाते हैं। वस्तुतः द्विवेदी जी की चिंता विविध विषयों का ज्ञान समेटकर इसे हिंदी पाठकों तक पहुँचा देना है। निबंध लिखते समय भाषागत व्यवस्था का ध्यान भी उनके मस्तिष्क में कम नहीं रहता होगा। उनके समीक्षात्मक निबंधों में उनका समालोचक रूप प्रकट हुआ है। संस्कृत के कवियों पर लिखते समय उनकी रस ग्राहिणी क्षमता का भी पता चलता है।

चंद्रधर शर्मा गुलेरी (1883-1920 ई.) इस युग के प्रमुख निबंधकार हैं। उनके निबंध संख्या में कम हैं, किंतु उनमें अगाध पांडित्य और आधुनिकता का अपूर्व समन्वय मिलता है। गुलेरी जी अतीत और वर्तमान के सूक्ष्मदर्शी विद्वान रचनाकार थे। वे साहित्य और अन्य सांस्कृतिक चेष्टाओं की गतिशीलता पहचानते थे, इसीलिए उनका दृष्टिकोण समाजशास्त्रीय है। उनके निबंधों में व्यंग्य-विनोद का रंग भी है। उनकी भाषा हिंदी गद्य का प्रतिमान है। उनके भाषाशास्त्रीय निबंध भी रोचक और अत्यंत पठनीय हैं। **कछुआ धर्म** और **मारेसि मोहिं कुठावँ** उनके प्रसिद्ध निबंध हैं।

अध्यापक पूर्णसिंह (1881-1931 ई.) ने **आचरण की सभ्यता, मज़दूरी और प्रेम, सच्ची वीरता** जैसे निबंध लिखे। इनमें बहुज्ञता के साथ भावुकता मिलती है। अध्यापक पूर्णसिंह का मिज़ाज एक ऐसे आधुनिक सूफी विद्वान का था जो समानता, शांति और मानवीय करुणा में विश्वास करता है। **मज़दूरी और प्रेम** में श्रम का जो सौंदर्य प्रकट किया गया है वह सौंदर्य बोध की आधुनिकता का द्योतक है।

बाबू श्यामसुंदर दास (1875-1945 ई.) के निबंध प्रायः विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर लिखे गए हैं, जो उस समय की बहुत बड़ी आवश्यकता की पूर्ति करते थे।

बाबू बालमुकुंद गुप्त (1865-1907 ई.) के निबंध द्विवेदी युगीन निबंधों में अपनी व्यंग्य-विनोदपूर्ण शैली और चुहलबाज़ी के कारण विशिष्ट हैं। इनकी शैली भारतेंदु युगीन

लेखकों की शैली के सबसे निकट रही हैं। ये राजनीतिक विषयों या घटनाओं, कभी-कभी किसी मेले, त्योहार या और किसी विषय पर शिवशंभू के नाम से **शिवशंभू का चिट्ठा** लिखते थे, जिसमें ब्रिटिश साम्राज्य की नीतियों या अपनी समझ से अनुचित व्यवहारों की खबर लेते थे।

उपन्यास

कहने को तो **भाग्यवती** और **परीक्षा गुरु** नामक उपन्यास भारतेंदु युग में ही लिखे जा चुके थे और देवकीनंदन खत्री का उपन्यास **चंद्रकांता** भी 1891 ई. में प्रकाशित हो चुका था किंतु हिंदी उपन्यासों की अविच्छिन्न परंपरा द्विवेदी युग से ही प्रारंभ हुई। इस काल के उपन्यासों में भी मध्य कालीन कथाओं का प्रभाव ज़्यादा है। इस काल में बँगला उपन्यासों का अनुवाद भी भारी संख्या में हुआ। कुछ उर्दू और मराठी के साथ-साथ अंग्रेज़ी उपन्यासों का भी अनुवाद हुआ। इस काल में शरत्चंद्र के उपन्यास हिंदी पाठकों में लोकप्रिय हो चले थे।

पंडित किशोरीलाल गोस्वामी (1865-1932 ई.) उन्नीसवीं शती के अंतिम दशक से उपन्यास लिखते आ रहे थे। उनके उपन्यासों की संख्या 65 है। **तारा, चपला, नव्य समाज चित्र, तरुण तपस्विनी, कुटीरवासिनी, रजिया बेगम या रंग महल में हलाहल, लीलावती का आदर्श, सती, राजकुमारी, लवंगलता, हीराबाई या बेहयाई का बारका, लखनऊ की कब्र या शाही महलसरा** आदि उनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं।

गोस्वामी जी के उपन्यास यौन भावना प्रधान हैं। उनमें वासना का रंग चटकीला है, थोड़ा बहुत सामाजिक पाखंड का उद्घाटन भी है। उनकी भाषा सहज है।

बाबू गोपालराम गहमरी (1866-1946 ई.) इस युग के अन्य उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं। उन्होंने जासूसी उपन्यास लिखे। **भोजपुर का ठग, बड़ा भाई** आदि उनके प्रमुख उपन्यास हैं। प्रसिद्ध कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और श्री लज्जाराम मेहता ने भी उपन्यास लिखे।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इस युग को उपन्यासों का प्रारंभिक दौर समझना चाहिए, जिसमें चरित्र और परिस्थिति में अंतःसंघर्ष नगण्य है तथा लेखक का ध्यान घटना-वैचित्र्य और मनोरंजन या नीति-उपदेश पर अधिक है।

कहानी

यह युग कहानियों का भी प्रारंभिक दौर है। इन कहानियों पर घटना-वैचित्र्य का प्रभाव है। यह अवश्य है कि हिंदी कहानी उपन्यास की अपेक्षा भाव-व्यंजकता की ओर प्रारंभ से ही झुकी है। हिंदी कहानियों के दर्शन पहले-पहले **सरस्वती** में हुए। किशोरीलाल गोस्वामी की **इंदुमती** कहानी **सरस्वती** में (1900 ई.) प्रकाशित हुई। शुक्ल जी ने 1900 ई. से 1907 ई. तक प्रकाशित होने वाली 6 कहानियों – **इंदुमती, गुलबहार, प्लेग की चुड़ैल, ग्यारह वर्ष का समय, पंडित और पंडितानी** तथा **दुलाई वाली** को हिंदी की प्रारंभिक कहानियाँ माना है। **इंदुमती** और **गुलबहार** के लेखक किशोरीलाल गोस्वामी हैं। शेष कहानियों के लेखक हैं – **प्लेग की चुड़ैल** : मास्टर भगवानदास, **ग्यारह वर्ष का समय** : रामचंद्र शुक्ल, **पंडित और पंडितानी** : गिरिजादत्त वाजपेयी, **दुलाई वाली** : बंग महिला (श्रीमती राजेंद्रबाला घोष)। **ग्यारह वर्ष का समय** अतीत की स्मृति की मार्मिक व्यंजना करती है। बाकी कहानियों में चमत्कारिकता की प्रधानता है।

यह काल लेखकों के एक बारगी कहानी लेखन की ओर झुक पड़ने का काल है। जयशंकर प्रसाद, विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक', राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह आदि ने इसी समय कहानियाँ लिखना प्रारंभ किया। प्रसाद ने 1911 ई. में **ग्राम** नामक कहानी अपने मासिक पत्र **इंदु** में प्रकाशित की। कौशिक की सामाजिक-पारिवारिक कहानी **रक्षाबंधन** 1913 में छपी। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की प्रसिद्ध कहानी **कानों में कंगना** 1913 में और हास्य रस के कहानी लेखक जी.पी. श्रीवास्तव की पहली कहानी 1919 ई. में छपी।

हिंदी कहानी सामाजिकता-पारिवारिकता की व्यापक भावभूमि पर प्रतिष्ठित हो रही थी। हिंदी कहानी के इस दौर की उपलब्धि हिंदी के प्रकांड विद्वान चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की, जिनकी चर्चा हम निबंध के प्रसंग में कर चुके हैं, कहानी **उसने कहा था** है। **उसने कहा था** 1915 ई. की **सरस्वती** में प्रकाशित हुई। यह कहानी भाव और कला दोनों ही दृष्टियों से उत्तम है। सामान्य व्यक्ति भी अपने भीतर प्रेम का अक्षय स्रोत किस प्रकार दबाए रहता है, एक मामूली-सी घटना व्यक्ति के अंतर्मन में फैलकर उसके जीवन को किस निर्णायक बिंदु पर ले जा सकती है, प्रेम की सात्विकता मनुष्य को कितनी उच्च भूमि पर

ले जा सकती है – यह सब इस कहानी में व्यक्त है। इसमें घटना सहज ऋजु मार्ग पर नहीं चलती, वह वक्र मार्ग पर चलती है यानी घटना-क्रम काल-क्रम पर नहीं, मनोभूमि के अनुसार व्यवस्थित है। शुक्ल जी ने इस कहानी में यथार्थवाद देखा। यह आकस्मिक नहीं कि प्रेमचंद की कहानियाँ लगभग इसी समय प्रकाशित होने लगीं।

नाटक

भारतेंदु के उपरांत कुछ समय के लिए हिंदी में मौलिक नाटकों का अभाव रहा। किंतु इस बीच विभिन्न भाषाओं से नाटकों का अनुवाद अवश्य बड़े पैमाने पर हुआ। बँगला, अंग्रेज़ी, संस्कृत नाटकों के हिंदी अनुवाद प्रकाशित हुए। शेक्सपीयर के नाटक **रोमियो जुलियट, मैकबेथ** और **हैमलेट** का अनुवाद हुआ। संस्कृत के नाटक **मृच्छकटिकम्, उत्तररामचरित, मालती माधव, मालविकाग्निमित्र** का हिंदी अनुवाद लाला सीताराम बी.ए. ने किया। इसी दौर में सत्यनारायण 'कविरत्न' ने **उत्तररामचरित** और **मालती माधव** का अनुवाद किया।

मौलिक नाटककारों में किशोरीलाल गोस्वामी, हरिऔध, शिवनंदन सहाय, राय देवीप्रसाद पूर्ण का नाम लिया जा सकता है। पर ये लोग साहित्य में अपने नाटकों के लिए नहीं, बल्कि अन्य विधा की रचनाओं के लिए विख्यात हैं।

किशोरी लाल गोस्वामी के नाटकों में उल्लेखनीय नाम **चौपट चपेट, मयंक मंजरी** आदि हैं। प्रथम प्रहसन है और दूसरा अति सामान्य कोटि का नाटक है। हरिऔध ने **रुक्मिणी परिणय** और **प्रद्युम्न विजय व्यायोग** लिखा। शिवनंदन सहाय के नाटक का नाम **सुदामा** है। पूर्ण जी ने **चंद्रकला भानुकुमार** नाटक लिखा।

समालोचना

भारतेंदु काल में पुस्तक-समीक्षा का सूत्रपात हो चुका था। भारतेंदु ने नाटक पर जो निबंध लिखा है, उसे समालोचना के अंतर्गत मानना चाहिए। किसी एक ही रचनाकार के गुण-दोष दिखाने के लिए हिंदी आलोचना की पहली पुस्तक महावीर प्रसाद द्विवेदी की **हिंदी कालिदास की आलोचना** है।

इस युग की हिंदी-आलोचना का ऐतिहासिक महत्त्व आधुनिक और रीतिवादी प्रवृत्तियों के द्वंद्व में है। इस युग के सभी आलोचकों को पूरी तरह से रीतिवादी या आधुनिक श्रेणी में रख देना भी उचित नहीं। मिश्र बंधु – श्याम बिहारी मिश्र (1873-1947 ई.), शुकदेव बिहारी मिश्र (1878-1951 ई.) रीति कालीन साहित्य के जानकार थे। उन्होंने **हिंदी नवरत्न** में देव को ऊँचा स्थान दिया और उन्हें सूर-तुलसी के समकक्ष रखा। यह उनकी रीतिवादिता का पता देता है। लेकिन मिश्र बंधुओं ने श्रीधर पाठक की खड़ी बोली कविताओं का स्वागत भी किया। इसका अर्थ यह हुआ कि मिश्र बंधु सर्वत्र न तो रीतिवादी थे न ही आधुनिकतावादी। इस प्रकार का द्वंद्व अलग-अलग व्यक्तियों में ही नहीं कभी-कभी एक ही व्यक्ति के अंदर भी चल रहा था।

रीति-विरोधी आलोचना नए ज्ञान-विज्ञान के आलोक में विकसित नए जीवन-मूल्यों के मानदंड पर साहित्य को तौलती थी, जबकि रीतिवादी आलोचना नायिका भेद, अलंकार आदि की दृष्टि से साहित्य की परीक्षा करती थी। जहाँ विरोध इस द्वंद्व पर नहीं होता था, वहाँ आलोचना का विकास नहीं दिखलाई पड़ा। पं. कृष्णबिहारी मिश्र सहृदय थे, किंतु उनके आलोचना मूल्य रीतिवादी ही थे। उन्होंने **देव और बिहारी** पुस्तक में देव को बिहारी से बड़ा कवि सिद्ध किया। इसके उत्तर में लाला भगवानदीन ने **बिहारी और देव** लिखकर बिहारी को देव से बड़ा सिद्ध किया। देव और बिहारी के विवाद में भाग लेने वाले आलोचकों में पद्मसिंह शर्मा भी थे। शर्मा जी संस्कृत, प्राकृत, हिंदी, फारसी और उर्दू साहित्य के मर्मज्ञ थे।

महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864-1938 ई.) ने अपनी आलोचना से हिंदी रचनाकारों को कथ्य और रूप के प्रयोग की प्रेरणा दी। उन्होंने साहित्य विशेषतः कविता के महत्त्व की पुनः स्थापना करने का प्रयास किया। उन्होंने कविता को केवल विलास की सामग्री नहीं माना। काव्य के रूप पक्ष के विषय में वे काफी आधुनिक थे। उन्होंने लिखा – गद्य और पद्य दोनों में कविता हो सकती है। उन्होंने तुक और अनुप्रास को कविता के लिए अनिवार्य नहीं माना।

पं. रामचंद्र शुक्ल (1884-1941 ई.) ने लेखन इसी काल में प्रारंभ किया था। उनका **साहित्य** नामक निबंध 1904 ई. की सरस्वती में छपा था, किंतु उनके निबंध संकलन और आलोचनात्मक ग्रंथ बाद में प्रकाशित हुए।

द्विवेदी युगीन गद्य की प्रवृत्तियाँ

- द्विववेदी युग ज्ञानार्जन् की साधना का युग है। यह कार्य प्रधानतः इस काल में विद्वान हिंदी-लेखकों ने अपने विचारपरक हिंदी निबंधों के द्वारा किया। इन निबंधों में प्राचीनता की ज्ञान-गरिमा और उसकी युगीन व्याख्या प्रस्तुत की जाती थी।
- महावीर प्रसाद द्विवेदी ने **सरस्वती** पत्रिका के संपादन के माध्यम से हिंदी खड़ी बोली को व्यवस्थित करके उसे एक साहित्यिक भाषा बनाने का सफल प्रयास किया।
- इस युग के लेखकों ने रीति कालीनता के स्थान पर साहित्य को अपने समय की समस्याओं से संयुक्त किया।
- द्विवेदी युग निबंध, उपन्यास, कहानी, समालोचना आदि का प्रारंभिक दौर है। इस युग में इन गद्य विधाओं ने अपना स्वरूप ग्रहण किया।

कविता

यह युग कविता में खड़ी बोली के प्रतिष्ठित होने का युग है। इसमें प्रबंध काव्य भी पर्याप्त संख्या में लिखे गए। अनेक कवियों ने ब्रजभाषा छोड़कर खड़ी बोली को अपनाया। एक ओर खड़ी बोली को ब्रजभाषा के समक्ष काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया, दूसरी ओर विकसित चेतना के कारण कविता नई भूमि पर संचरण करने लगी। रीति का विरोध निषेधात्मक था। सार्थक विरोध किसी रचनात्मक दिशा की ओर उन्मुख होना है। वास्तव में, जो बोध रीतिवाद का विरोध कर रहा था, वही एक नया भाव भी निर्मित कर रहा था।

नए भाव बोध का पहला लक्षण स्वच्छंदता की प्रवृत्ति थी जो **श्रीधर पाठक** (1876-1928 ई.) के काव्य में प्रकट हुई। यह रीतिबद्धता एवं प्रणाली-निर्दिष्टता के विरोध और उसके प्रति विद्रोह का एक स्वाभाविक परिणाम था।

श्रीधर पाठक खड़ी बोली के प्रथम कवि हैं जिनमें काव्यगत स्वच्छंदता के दर्शन हुए। पाठक जी पहले ब्रजभाषा में कविता करते थे। उनका प्रकृति-प्रेम ब्रजभाषा काव्य में भी प्रकट हो चुका था। खड़ी बोली उनके भाव बोध के अधिक अनुकूल थी। 1900 ई. में उन्होंने **गुनवंत हेमंत** नाम की कविता लिखी। इसमें प्रकृति को किताबी तरह से नहीं,

अपनी आँखों से देखा गया था। इसमें ज्वार, बाजरा, खरीफ, रबी, सौंफ, सोवा, पालक आदि का वर्णन है –

खरीफ के खेतों में जब सुनसान है। रब्बी के ऊपर किसान का ध्यान है।
जहाँ तहाँ रहट परोहे चल रहे। बरहे जल के चारों ओर निकल रहे।
जौ-गेहूँ के खेत सरस सरसों घनी। दिन-दिन बढ़ने लगी विपुल शोभा सनी।
सुघर सौंफ सुंदर कुसुम की क्यारियाँ। सोआ पालक आदि विविध तरकारियाँ।
अपने-अपने ठौर सभी ये सोहते। सुंदर शोभा से सबका मन मोहते।

श्रीधर पाठक ने **एकांतवासी योगी** की रचना खयाल व लावनी की लय पर की। एकांत की तलाश भी प्रकृति में रमने की प्रवृत्ति का द्योतक है। इन्होंने गोल्डस्मिथ की पुस्तक **ट्रेवलर** का छंदोबद्ध अनुवाद **श्रांत पथिक** नाम से किया। **ऊजड़ग्राम** नामक इनकी रचना ब्रजभाषा में है। उन्होंने छंदों को नए ढाँचों में ढाला। ऐसा करने में वे लय एवं प्रवाह का ध्यान रखते थे।

इस समय के कवियों ने पौराणिक और ऐतिहासिक कथानक को आधार बनाकर प्रबंध काव्य लिखे। ऐसे कवियों में **अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'** (1865-1947 ई.) कालक्रम की दृष्टि से पहले आते हैं। इनका प्रबंध काव्य **प्रियप्रवास** 1914 ई. में प्रकाशित हुआ। **प्रियप्रवास** की रचना का एक उद्देश्य तो खड़ी बोली में महाकाव्य के अभाव की पूर्ति करके यह दिखाना था कि इस भाषा में भी महाकाव्य रचा जा सकता है। साथ ही साथ **प्रियप्रवास** के माध्यम से हरिऔध ने कृष्ण कथा को नए मूल्यों के साँचे में ढालने का प्रयास किया। उन्होंने कृष्ण कथा की अलौकिक घटनाओं को बुद्धि संगत एवं विश्वसनीय ढंग से प्रस्तुत करने की चेष्टा की।

हरिऔध जी उर्दू छंदों का भी इस्तेमाल अधिकारपूर्वक कर सकते थे। वे तत्सम पदावली भी लिख सकते थे और बोलचाल की मुहावरेदार ज़बान में भी। **चोखे चौपदे** ऐसे ही चौपदों का संग्रह है –

क्यों पले पीस कर किसी को तू!
है बहुत पालिसी बुरी तेरी।
हम रहे चाहते पटाना ही।
पेट तुझसे पटी नहीं मेरी।

पद्य प्रसून और **वैदेही बनवास** उनकी अन्य काव्य कृतियाँ हैं।

मैथिलीशरण गुप्त (1886-1964 ई.)

हिंदी के लोकप्रिय कवि मैथिलीशरण गुप्त की खड़ी बोली हिंदी की रचनाएँ **सरस्वती** में 1906 ई. से छपने लगी थीं। गुप्त जी की कविताओं में राष्ट्रीय भावना चरम विकास पर पहुँची है। उन्हें **भारत-भारती** से बहुत अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई। **भारत-भारती** में देश के अतीत और वर्तमान का चित्र खींचा गया और भविष्य की सुखद कामना की गई थी। गुप्त जी की कविताओं से खड़ी बोली हिंदी को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने में अभूतपूर्व सहायता मिली। **भारत-भारती** की पंक्तियाँ हिंदी भाषी क्षेत्र के शिक्षित जनों को कंठस्थ थीं। कविता से जन-जागरण का काम यदि किसी ने सबसे अधिक सफलता के साथ किया तो गुप्त जी ने। वस्तुतः गुप्त जी राष्ट्रकवि इसी कृति के कारण कहलाए।

गुप्त जी व्यापक संवेदना के रचनाकार हैं। उन्होंने अपने युग के भावबोध को समग्रता में ग्रहण करके उसे चित्रित किया है। आधुनिक हिंदी काव्य में वैष्णव उदारता के वे प्रतिनिधि हैं। संकीर्णता की गंध न उनके व्यक्तित्व में थी, न कृतित्व में। उनकी कविता का विषय-क्षेत्र भी व्यापक है। भारत के सभी धार्मिक मतों एवं विश्वासों का समाहार उनकी काव्य-भावना में हो गया है।

हिंदी के प्रसिद्ध कवियों में प्रबंध काव्य सबसे अधिक गुप्त जी ने ही लिखे हैं। उनकी वास्तविक काव्य-प्रतिभा प्रबंध काव्यों में दिखाई पड़ती है। उनके प्रबंध काव्य अधिकांशतः पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथानकों पर आधारित हैं। इन प्रबंध काव्यों की मूल संवेदना आधुनिक है, इनमें अतीत को नए बोध के अनुसार व्याख्यायित किया गया है। विकसित चेतना के आलोक में अपने धार्मिक ऐतिहासिक महापुरुषों को देखा गया है। गुप्त जी ने धार्मिक विश्वासों को आहत किए बिना कथा के भाव पक्ष को नए बोध से युक्त कर दिया। गुप्त जी के प्रसिद्ध प्रबंध काव्य इस प्रकार हैं –

साकेत : यह विशद प्रबंध काव्य है। इसमें लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला को नायिका बनाकर रामकथा कही गई है।

यशोधरा : इसकी नायिका गौतम बुद्ध की पत्नी यशोधरा हैं।

विकट भट : जोधपुर के एक राजपूत सरदार की तीन पीढ़ियों तक चलने वाली कथा जिसमें वचन निभाने का वर्णन है।

रंग में भंग : यह राजपूती आन की कथा है।

किसान : यह एक सामान्य किसान के जीवन-संघर्ष की कथा है।

सिद्धराज, **पलासी का युद्ध** के अतिरिक्त **जयद्रथ-वध** और **पंचवटी** उनके विख्यात खंड काव्य हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारत में गुप्त जी ने **जयभारत** नाम से महाभारत की कथा लिखी। उनकी संवेदना की व्यापकता का प्रमाण मार्क्स की पुत्री जैनी पर रचित **जयिनी** नामक कृति है।

गुप्त जी की कृतियों में आधुनिक युग की लोकान्मुखता मानवीय करुणा के साथ घुल-मिल गई है। उन पर गांधीवाद का प्रभाव स्पष्ट है। वे अतीत के प्रेमी हैं, किंतु वर्तमान की विषमता को देखने से कतराते नहीं। सबसे बड़ी बात यह है कि वे नए विचारों का स्वागत करने में पीछे नहीं रहते। इसीलिए उनका अतीत प्रेम भविष्योन्मुख है। वे लोक की महिमा प्रतिष्ठित करने वाले रचनाकार हैं।

इसी से संबद्ध गुप्त जी की नारी-भावना है। नारी परिवार के केंद्र में होती है। नई चेतना ने भारतीय नारी-जीवन की पीड़ा को पहचाना। नारी भावना को पहचानने और उसका चित्रण करने में गुप्त जी हिंदी काव्य के इतिहास में बेजोड़ हैं। नारी पात्रों पर स्थितियों का जो प्रभाव पड़ता है, उसका चित्रण गुप्त जी अचूक स्वाभाविकता एवं मनोवैज्ञानिकता के साथ करते हैं। उनके नारी पात्र स्वाभिमानी, देशभक्त, कर्तव्यपरायण होकर अपनी निजी वेदना खो नहीं देते। **साकेत** की उर्मिला, **यशोधरा** की गोपा इस दृष्टि से बहुत जटिल किंतु स्वाभाविक और आधुनिक पात्र हैं। भारतीय नारी के जीवन के विषय में ऐसी मार्मिक उक्ति पूरे भारतीय साहित्य में शायद ही कहीं मिले –

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

गुप्त जी ने मुक्तक भी कम नहीं लिखे हैं। उनके मुक्तक व्यवस्थित होते हैं। भाषा का प्रवाह चाहे उनमें न मिले, किंतु स्थिति योजना की दृष्टि से वे चुस्त होते हैं।

गुप्त जी ने कुछ बँगला काव्य कृतियों का अनुवाद भी किया है। माइकेल मधुसूदन दत्त के **मेघनाद-वध** का जैसा उत्तम अनुवाद उन्होंने किया है, वह अभी तक काव्यानुवाद का प्रतिमान है। गुप्त जी ने गीत और गेयपद भी लिखे हैं। हरिगीतिका इनका प्रिय छंद है।

प्रबंध काव्यों में यथास्थान वाक्चातुरी, संवादात्मकता और वक्तृता पाई जाती है। कहीं-कहीं तुकों का मोह अखरता है। जैसे वे निरंतर नए-नए विषयों की ओर मुड़ते गए हैं, वैसे ही शिल्प की ओर भी। गुप्त जी ने अतुकांत रचनाओं में सफलता पाई है।

मेघनाद-वध का अनुवाद अतुकांत कविता में किया। बाद में यह छंद प्रवृत्ति प्रसाद और निराला की रचनाओं में मिलती है। छायावाद के दौर में गुप्त जी ने उस ढंग की भी कविताएँ लिखीं। गुप्त जी यद्यपि स्वातंत्र्योत्तर भारत में, नई कविता के आंदोलन के समय तक रचनारत रहे, किंतु प्रमुख काव्य-प्रवृत्ति की दृष्टि से उन्हें छायावाद-पूर्व (1900-1920 ई.) काल का ही रचनाकार मानना उचित होगा।

रामनरेश त्रिपाठी (1889-1962 ई.)

रामनरेश त्रिपाठी के काव्य में श्रीधर पाठक की भाँति स्वच्छंदता की प्रवृत्ति मिलती है। उन्होंने भी प्रबंध काव्य लिखे हैं। लेकिन उनके प्रबंध काव्य पौराणिक या ऐतिहासिक आख्यानों पर आधारित नहीं हैं। उन्होंने देश के राजनीतिक वातावरण के अनुसार कथा की कल्पना की है। इस दृष्टि से वे विशिष्ट प्रबंधकार हैं। कथा-कल्पना की यह प्रवृत्ति स्वच्छंदता की द्योतक है। इनकी कथा-कल्पना में नर-नारी का मनोविज्ञान, युगीन भावबोध एवं प्रकृति की रमणीयता – सबका योगदान है। प्रेम की भावना और कर्तव्य का विवेक-बोध इन दोनों के द्वंद्व में देश-प्रेम को बलवती भावना बताकर कवि ने प्रेम को विस्तार दिया है। शुक्ल जी के शब्दों में– 'देशभक्ति को रसात्मक रूप त्रिपाठी जी द्वारा प्राप्त हुआ।' त्रिपाठी जी के प्रसिद्ध प्रबंधकाव्य हैं– **मिलन, पथिक** और **स्वप्न**।

त्रिपाठी जी देश के स्वतंत्रता सेनानी भी थे, केवल साहित्यकार नहीं। वे कई बार जेल गए थे। देश के प्रायः सभी भागों का उन्होंने भ्रमण किया था। इसीलिए **पथिक** में दक्षिण भारत और **स्वप्न में** उत्तर भारत की प्रकृति का उन्होंने जो वर्णन किया है, उसमें प्रकृति की स्थानीय विशेषताएँ उभरी हैं। उनके तीनों प्रबंध काव्यों में स्वाधीनता संग्राम में रत भारतीय मानस की नैतिकता, त्याग एवं बलिदान भावना का आग्रह है।

रामनरेश त्रिपाठी के काव्य में मनुष्य के कर्म-सौंदर्य एवं प्रकृति के सौंदर्य का संश्लेष है। उनके यहाँ प्रकृति का स्वाभाविक सौंदर्य मनुष्य के गहरे मनोरागों का चित्र बन जाता है। उनके काव्य में प्रकृति का स्वतंत्र व्यक्तित्व झलकता है।

त्रिपाठी जी व्याकरण सम्मत एवं व्यवस्थित भाषा लिखने में सिद्ध कवि हैं। उनका काव्य-गठन चुस्त है। उन्होंने उर्दू में प्रचलित छंदों का प्रयोग भी कौशलपूर्वक किया है।

इस युग के अन्य उल्लेखनीय कवि हैं– महावीर प्रसाद द्विवेदी , नाथूराम शंकर शर्मा, रामचंद्र शुक्ल, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'।

द्विवेदी जी मूलतः भाषा एवं साहित्य के व्यवस्थापक थे। वे कविता करते समय भी नियमों की अवहेलना नहीं कर सकते थे। इसलिए उनकी कविता बहुत कुछ उनके सिद्धांतों के मेल में है। नाथूराम शंकर आर्यसमाजी थे। उनके काव्य में अंधविश्वास, रूढ़ि और पाखंड का विरोध तथा इनके प्रति व्यंग्य-विनोद का भाव मिलता है। छंद संबंधी नियमों का पालन उनके काव्य में कड़ाई से किया गया है। रामचंद्र शुक्ल का काव्य संग्रह **हृदय का मधुर भार** नाम से छपा है। उनकी कविताओं में प्रकृति के सहज सौंदर्य का चित्रण विशेष रूप से मिलता है। उन्होंने, **लाइट ऑफ एशिया** नामक अंग्रेज़ी काव्य **बुद्धचरित** नाम से ब्रजभाषा में अनूदित किया।

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' का एक उपनाम 'त्रिशूल' भी था। ये स्वाधीनता प्रेमी और स्वच्छंद कवि हैं। उर्दू में भी ये बहुत अच्छी कविता करते थे।

यद्यपि 1918 ई. के आस-पास हिंदी काव्य में छायावाद का उदय हो गया, किंतु इस दौर की प्रवृत्तियों वाली धारा बाद में भी प्रवाहित होती रही। ठाकुर गोपालशरण सिंह, अनूपशर्मा, श्यामनारायण पांडे इतिवृत्तात्मक शैली में काव्य रचना करते रहे।

द्विवेदी युगीन कविता की प्रवृत्तियाँ

- इस युग की हिंदी कविता ने रीतिवादी प्रवृत्तियों को पीछे धकेल दिया। इस युग में खड़ी बोली काव्य भाषा के रूप में व्यवस्थित हुई।
- कविता में अनेक महत्त्वपूर्ण प्रबंध काव्यों की रचना हुई। इन प्रबंध काव्यों में पौराणिक और ऐतिहासिक कथाओं और उनके पात्रों की आधुनिक एवं तर्कसंगत व्याख्या प्रस्तुत की गई और उन्हें युग के अनुकूल रूप दिया गया।
- श्रीधर पाठक और रामनरेश त्रिपाठी जैसे स्वच्छंदतावादी कवियों ने कल्पित प्रबंध काव्य भी लिखे।

  इस युग की कविता अधिकांशतः इतिवृत्तात्मक हैं।
- द्विवेदी युग की कविता में मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवि की रचनाओं के माध्यम से हिंदी कविता का राष्ट्रीय रूप उभरता है।
- द्विवेदी युग का काव्य छायावाद का मार्ग प्रशस्त करता है।

गांधी युग का साहित्य : यथार्थ और स्वप्न की अभिव्यक्ति (1920-1947 ई.)

1920 से लेकर 1947 तक के साहित्यिक काल-खंड को हमने गांधी युग कहा है। इस युग में हमारे स्वाधीनता आंदोलन का नेतृत्व जिन नेताओं ने किया उनमें गांधी अग्रगण्य एवं सर्वाधिक मान्य हैं। 1947 ई. में भारत स्वतंत्र हुआ और दुर्भाग्य से उसके बाद उनकी हत्या कर दी गई। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य को ध्वस्त किया, किंतु सत्ता के भागीदार नहीं हुए। पराधीन भारत में उन्होंने स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया। वे विवेच्य युग के इतिहास-पुरुष एवं संघर्ष-नायक हैं। इस युग का साहित्य प्रधान रूप से इसी ऐतिहासिक संघर्ष की वाणी है। गांधी इकहरे राजनीतिज्ञ नहीं थे। वे राजनीति को धर्म और संस्कृति से अलग नहीं रखते थे। उन्होंने हिंदी प्रचार आंदोलन में अन्यतम योगदान किया। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर हम इस कालखंड को **गांधी युग** कहना उचित समझते हैं।

1914 ई. में गांधी जी अफ्रीका से भारत लौटे। देश में उनके आते ही स्वाधीनता-आंदोलन का रूप बदल गया। गांधी जी देश को अहिंसक आंदोलन के द्वारा स्वाधीन कराना चाहते थे। उन्होंने देश का दौरा किया। चंपारन में किसान-आंदोलन छेड़ा। कांग्रेस अब केवल पढ़े-लिखे लोगों की गोष्ठी और वाद-विवाद का मंच नहीं बल्कि व्यापक अखिल भारतीय जन आंदोलन बन गई।

हिंदी साहित्य को जन आंदोलन की इस व्यापकता एवं तीव्रता से ऊर्जा मिली। इतिहास का नया दौर नए प्रश्न प्रस्तुत करता है। पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान की जानकारी से भी भारतीय मानस में स्वाधीनता की भावना जग रही थी। नाना विषयों के प्रति जिज्ञासा बढ़ रही थी और यह जिज्ञासा व्यक्ति के मन में कल्पना का नया लोक निर्मित कर रही थी। रवींद्रनाथ ठाकुर को विश्व प्रसिद्ध नोबेल पुरस्कार मिल चुका था और उनकी कविताओं का प्रभाव हिंदी कविता पर भी पड़ रहा था। इन कविताओं में कल्पना की अतिशयता थी, कोमलकांत पदावली थी, नई शब्द-योजना और बिंब-विधान था। इसे आलोचकों नें 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' कहा। यह काव्यधारा छायावाद कहलाई। इसमें रहस्य एवं अध्यात्म की भावना भी लिपटी थी।

छायावादी कविता स्वप्निल होते हुए भी यथार्थ पर आधारित थी। इस यथार्थ को प्रेमचंद के उपन्यास चित्रित कर रहे थे। प्रेमचंद यथार्थ एवं उसका स्वप्न दोनों चित्रित कर रहे थे इसीलिए उनके उपन्यास आदर्शोन्मुख यथार्थवादी हैं।

हिंदी साहित्य का चौथा दशक अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस दशक में किसान आंदोलन राजनीति में प्रभावशाली बना। इसी दशक में **साकेत, गोदान, कामायनी, राम की शक्ति पूजा** जैसी गौरवशाली रचनाएँ प्रकाशित हुईं। **चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी** जैसे नाटक लिखे गए। इनमें अतीत की पुनर्व्याख्या करके उसे वर्तमान के लिए संदर्भवान बनाया गया है। **कफ़न, पूस की रात, हार की जीत** कहानियों में यथार्थ की पहचान और उस यथार्थ को विषमता से मुक्त करने का स्वप्न है।

1936 ई. के आस-पास छायावादी युग समाप्त हो गया। 1918 ई. में रूस में समाजवादी क्रांति हो चुकी थी। इसका प्रभाव भारत के बुद्धिजीवियों पर भी पड़ा और 1936 ई. में लखनऊ में **प्रगतिशील लेखक संघ** की स्थापना हुई। यह लेखकीय संगठन समाजवादी विचारधारा से प्रभावित एवं संबद्ध था। इसकी अध्यक्षता प्रेमचंद ने की।

स्वाधीनता आंदोलन स्वाधीन मानसिकता के बिना असंभव था। 1918 से 1947 ई. तक का युग जिस प्रकार अपने यथार्थ से विक्षुब्ध था, उसी प्रकार एक स्वप्न भी निर्मित कर रहा था। आशा-आकांक्षा के स्वप्नलोक के बिना संघर्ष नहीं हो सकता। इसीलिए भारत अपनी पराधीनता के यथार्थ से उबरने और स्वाधीनता के स्वप्न की पूर्ति के लिए संघर्ष कर रहा था। पराधीनता हमारा राष्ट्रीय कलंक और स्वाधीनता हमारा राष्ट्रीय स्वप्न था। यथार्थ और आदर्श इस एक ऐतिहासिक स्थिति के ही दो पहलू थे। इसीलिए इस दौर के साहित्य में ये दोनों साहित्य के प्रेरक हैं।

इस युग के साहित्य का परिचय इस प्रकार है –

उपन्यास

हिंदी में उपन्यास लेखन तो भारतेंदु-युग से ही प्रारंभ हो गया था, लेकिन **प्रेमचंद** (1880-1936 ई.) के उपन्यासों में इस विधा ने अभूतपूर्व व्यापकता और गंभीरता प्राप्त की। प्रेमचंद की संवेदना अत्यंत व्यापक थी। जितनी व्यापक उनकी संवेदना थी उतनी ही सूक्ष्म उनकी दृष्टि थी। उपन्यास विधा के चरम उत्कर्ष के लिए जिस सहज भाषा-शैली की आवश्यकता

होती है वह भी प्रेमचंद के पास थी। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार – "अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाषा-भाव, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, दुख-सुख और सूझ-बूझ जानना चाहते हैं तो प्रेमचंद से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता।"

प्रेमचंद के उपन्यासों का विषय-क्षेत्र बहुत व्यापक है। वे प्रधानतः गध्यवर्ग और निम्न वर्ग के कथाकार हैं, किंतु उनके रचना-संसार में सभी वर्गों के लोग सिमट आए हैं। यहाँ प्रकृति, पशु-पक्षी सब मौजूद हैं। फिर उनके आर्थिक, सामाजिक, वर्णगत, पारिवारिक संबंधों का ढाँचा और पात्रों के चरित्र की निजी विशेषताएँ भी मिलेंगी। प्रेमचंद के पात्र प्रतिनिधि पात्र हैं। निजी विशेषताओं से रहित होकर कोई प्रतिनिधि पात्र नहीं हो सकता।

प्रेमचंद पर गांधीवाद का प्रभाव स्पष्ट है। उनके अनेक प्रारंभिक उपन्यासों पर गांधीवादी आदर्श, हृदय परिवर्तन एवं सुधारवाद का प्रभाव है। उपन्यास का अंत हृदय परिवर्तन और किसी आश्रम-स्थापना में होता है। उपन्यासों का अंत ही नहीं, पात्र, चरित्र-चित्रण आदि पर गांधीवादी सिद्धांतों का दबाव है। प्रेमचंद के अंतिम और प्रतिनिधि उपन्यास **गोदान** में आदर्शवाद से उनका मोहभंग हो गया है। वे आद्यंत यथार्थ को ही दृष्टि में रखते हैं, इसीलिए **गोदान** दुखांत है।

प्रेमचंद मूलतः कृषक जीवन के रचनाकार हैं। किसान को भूमि से कितनी आत्मीयता होती है इसका चित्रण वे **रंगभूमि** और **प्रेमाश्रम** में करते हैं। किसानों पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद, बड़े व्यापारियों, छोटे व्यापारियों आदि सबका भार था। छोटे किसानों के साथ छोटे ज़मींदारों की भी हालत बिगड़ रही थी। **गोदान** में उन्होंने दिखाया है कि छोटा किसान किस तरह क्रमशः भूमिहीन होकर मज़दूर बनने पर विवश हो रहा है। भूमि पर आश्रित ज़मींदार राय साहब की भी आर्थिक स्थिति खोखली है।

प्रेमचंद की महानता इस बात से प्रकट हो जाती है कि उन्होंने तिलस्मी और ऐयारी कथा साहित्य के पाठकों को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्याओं पर आधारित कथा साहित्य की ओर मोड़कर उनकी रुचि में अभूतपूर्व परिष्कार किया। प्रेमचंद की भाषा न किताबी हिंदी है न किताबी उर्दू, वह सहज हिंदी भाषा है।

प्रेमचंद के उपन्यासों में पात्रों और घटनाओं को इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि वे हमारे देखे-सुने लगते हैं। उनके उपन्यासों में स्वभाव और परिस्थिति की टकराहट से पात्रों का चरित्र-विकास होता है, जो हिंदी कथा साहित्य में नई बात थी।

सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन , कर्मभूमि, गोदान, और मंगल सूत्र (अपूर्ण) आदि प्रेमचंद के प्रमुख उपन्यास हैं।

वृंदावनलाल वर्मा (1889-1969 ई.) के उपन्यास बुंदेलखंड के इतिहास से संबंधित हैं। वे ऐतिहासिक भी थे और क्षेत्रीय या आंचलिक भी। **गढ़कुंडार, विराटा की पद्मिनी, झाँसी की रानी, मृगनयनी** उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

यशपाल (1903-1976 ई.) ने **दिव्या** (1945) लिखा जो ठीक-ठीक ऐतिहासिक उपन्यास तो नहीं है, क्योंकि खुद दिव्या कल्पित पात्र है, किंतु इसमें प्राचीन भारत के एक काल खंड को दृष्टि विशेष से देखकर सजीव रूप में प्रस्तुत किया गया है। राहुल सांकृत्यायन (1893-1963 ई.) ने इसी दृष्टि से प्राचीन गणतंत्रों के जीवन को आधार बनाकर **सिंह सेनापति** और **जय यौधेय** जैसे ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। स्वतंत्रता के ठीक एक वर्ष पहले 1946 ई. में हजारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास **बाणभट्ट की आत्मकथा** प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में ऐतिहासिकता को सुरक्षित रखते हुए आधुनिक विचारों को समो दिया गया है। **बाणभट्ट की आत्मकथा** में हर्षकालीन उत्तर भारत का सांस्कृतिक जीवन अत्यंत सजीव तौर पर चित्रित है। ऐतिहासिक वातावरण का उपयोग भगवतीचरण वर्मा ने पाप और पुण्य की समस्या को नए ढंग से परिभाषित करने का प्रयास करने वाले उपन्यास **चित्रलेखा** में किया। रांगेय राघव ने 1946 ई. में ही सिंधुघाटी की विलुप्त सभ्यता को आधार बना कर महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक रोमानी उपन्यास **मुर्दों का टीला** लिखा।

प्रेमचंद का प्रभाव हिंदी उपन्यास साहित्य पर दो तरह से पड़ा। एक तो उनकी तरह उपन्यास लिखने वाले कथाकार सामने आए, जैसे विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', प्रताप नारायण श्रीवास्तव, जिनके क्रमशः **माँ** और **विदा** उपन्यास प्रसिद्ध हैं। जयशंकर प्रसाद ने **तितली** नामक उपन्यास में ग्रामीण जीवन के संघर्ष का चित्रण किया। निराला ने कई प्रकार के उपन्यास लिखे। **प्रभावती** ऐतिहासिक है, **अलका** सामाजिक तो **बिल्लेसुर बकरिहा** व्यक्तिपूर्ण जिसकी अंतर्धारा करुणा की है। सामान्य समझे जाने वाले किंतु अपनी निष्ठा में विशिष्ट समकालीन व्यक्तियों के जीवन पर निराला ने ऐसी रचनाएँ प्रस्तुत कीं जो औपन्यासिक जीवनियाँ हैं, जैसे **कुल्ली भाट** और **चतुरी चमार**। दूसरी बात यह कि प्रेमचंद से भिन्न प्रकार के उपन्यासों को लिखने का प्रचलन हुआ जिनमें सामाजिक

समस्याएँ नहीं बल्कि निजी या वैचारिक समस्याओं को केंद्र में रखकर कथानक बुना जाता था। ऐसे उपन्यासकारों में जैनेंद्र का नाम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है जिन्होंने **सुनीता** (1935) और **त्यागपत्र** (1936) उपन्यास लिखे। इनमें विशिष्ट स्थितियों के कारण विचित्र या विशिष्ट चरित्रों को केंद्र में रखकर कथानक रचा गया है। जैनेंद्र कुमार के इन उपन्यासों में सामाजिक, पारिवारिक और यौन समस्याओं को गुंफित कर दिया गया है। समाज की विकृतियों को सामने लाकर उनका भंडाफोड़ करने और समाज को अधिक मानवीय एवं क्षमाशील बनाने के उद्देश्य से जयशंकर प्रसाद ने **कंकाल** (1930) लिखा, जिसे कुछ लोगों ने प्रकृत यथार्थवादी उपन्यास कहा।

समाज के पाखंड पूर्ण कुत्सित पक्षों का उद्घाटन और चित्रण करने में सिद्धहस्त पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने इसी उददेश्य से **दिल्ली का दलाल, मनुष्यानंद, सरकार तुम्हारी आँखों में** तथा **बुधुआ की बेटी** जैसे उपन्यास लिखे।

हिंदी उपन्यासों पर इस बीच फ्रायड के मनोविश्लेषणवादी विचारों का प्रभाव पड़ा। इलाचंद्र जोशी और अज्ञेय के उपन्यासों पर मनोविश्लेषणवाद के प्रभाव को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया जा सकता। इलाचंद्र जोशी के उल्लेखनीय उपन्यास **संन्यासी** और **पर्दे की रानी** हैं।

अज्ञेय का प्रसिद्ध उपन्यास **शेखर : एक जीवनी** का प्रथम भाग 1941 ई. में और दूसरा भाग 1944 ई. में प्रकाशित हुआ। **शेखर** आतंकवाद की छाया में लिखा हुआ एक ऐसा उपन्यास है जिस पर मनोविश्लेषण शास्त्र के प्रभाव के साथ समाज के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति और उनके विचारों को देखा गया है।

उपेंद्रनाथ अश्क के उपन्यास **गिरती दीवारें** में सामाजिक विषयवस्तु को व्यक्तिपरक दृष्टि से चित्रित किया गया है।

इस काल में साहित्यिक हास्य और व्यंग्य की छटा अमृतलाल नागर के दो उपन्यासों **नवाबी मसनद** और **सेठ बाँकेमल** में मिलती है।

कहानी

चंद्रधर शर्मा गुलेरी की **उसने कहा था** नामक कहानी 1915 ई. में प्रकाशित हुई। संवेदना और शिल्प की दृष्टि से यह कहानी बेजोड़ थी। 1916 में प्रेमचंद की कहानी **पंच परमेश्वर** प्रकाशित हुई। इस कहानी को अभूतपूर्व लोकप्रियता प्राप्त हुई।

प्रेमचंद की कहानिया का ससार बहुत व्यापक एवं विविधतापूर्ण है। उनकी प्रारंभिक कहानियों पर लोकवार्ताओं का प्रभाव है, जैसे – **सारंगा सदावृक्ष, आत्माराम, दामुल का कैदी** आदि। **दामुल का कैदी** में तो कथानक गढ़ने में पुनर्जन्म का भी सहारा लिया गया है।

कहानी की विधा, जो यूरोप से आई थी, प्रेमचंद के हाथों ठेठ भारतीय बन गई। उन्होंने उस विधा में भारतीय जीवन, उसका परस्पर विरोधी समकालीन यथार्थ एवं आदर्श और विकास – सब घुलामिला दिया है।

प्रेमचंद की कहानियाँ स्वाधीनता संग्राम के आदर्श से ओत-प्रोत हैं।

प्रेमचंद की कहानियों में नारी विविध रूपों में आती हैं। इस दृष्टि से उनकी **बूढ़ी काकी** कहानी अनुपम है। जो असहाय और हास्यापद है, उनकी मानसिकता को समझना महान रचनाकारों के ही बस की बात होती है। प्रेमचंद की कहानियों को पढ़नेवाला जानता है कि उनकी कहानियों में बच्चों को कितना स्थान मिला है। वे बच्चों की मानसिकता को कितना समझते हैं। **ईदगाह** और **रामलीला** कहानियाँ बाल-मनोविज्ञान की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। **बूढ़ी काकी** में उपेक्षिता बूढ़ी काकी की खोज-खबर अंततः छोटी बच्ची ही लेती है। बुड्ढे और बच्चे ही नहीं पशु-पक्षियों को भी प्रेमचंद की कहानियों में अद्‌भुत आत्मीयता दी गई है। **दो बैलों की कथा** के हीरा-मोती, **पूस की रात** का झबरा कुत्ता, **आत्माराम** का तोता हिंदी पाठकों के हृदय में घर कर गए हैं। **दो बैलों की कथा** तो पराधीनता के विरुद्‌ध संघर्ष की प्रतीकात्मक कहानी ही है।

प्रेमचंद की कुछ कहानियाँ – विशेष रूप से उनकी अंतिम कहानियों में से एक **कफ़न** ऐसी कहानी है जो आद्‌यंत यथार्थबोध का आधार नहीं छोड़ती।

प्रेमचंद के समकालीन प्रसिद्‌ध छायावादी कवि प्रसाद ने रोमानी, सामाजिक और चरित्र प्रधान कहानियाँ लिखी हैं। **पुरस्कार, आकाशदीप, मधुआ, गुंडा** उनकी प्रसिद्‌ध कहानियाँ हैं। **आकाशदीप** रोमानी ऐतिहासिक कहानी है। **मधुआ** प्रेमचंद की और **गुंडा** उग्र की कहानियों से मिलती-जुलती है। मन की गहरी पर्तों को खोलने का उद्‌देश्य लेकर चलने वाली कहानियों की शुरुआत वस्तुतः हिंदी में प्रसाद की कहानियों से ही होती है। रायकृष्ण दास की कहानी **अंतःपुर का आरंभ** प्रसाद के प्रभाव में लिखी गई प्रतीत होती है।

प्रेमचंद के समकालीन कहानीकारों में विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' और सुदर्शन सामाजिक एवं पारिवारिक विषयों पर कहानियाँ लिखते थे। विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' की कहानी **ताई** और सुदर्शन की **हार की जीत** बहुत प्रसिद्ध हुई। ये आदर्शवादी ढर्रे की ही कहानियाँ हैं।

प्रेमचंद के बाद उनके ढर्रे की कहानियाँ अधिकांशतः प्रगतिशील कहानीकारों ने ही लिखीं जिनमें यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, उपेंद्रनाथ 'अश्क', अमृतराय, रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' आदि उल्लेखनीय हैं। यशपाल प्रेमचंदोत्तर हिंदी कहानीकारों में प्रमुख हैं। उनकी पहली कहानी **मक्रील** 1934 ई. में छपी।

राहुल जी ने **सतमी के बच्चे** (1935) के अलावा **वोल्गा से गंगा** (1942) लिखी जो इतिहास के विभिन्न युगों को चित्रित करने वाली कहानियों का संग्रह है। इससे पूरा मानव-इतिहास आँखों के सामने आ जाता है। भगवतशरण उपाध्याय का कहानी-संग्रह भी इसी प्रकार का है। अश्क उर्दू से हिंदी में आए। उनका पहला कहानी-संग्रह **जुदाई की शाम का गीत** 1933 ई. में छपा था, **डाची** 1937 ई. में। अमृतराय, पहाड़ी, श्यामू, संन्यासी, भैरव प्रसाद गुप्त आदि ने इसी समय लिखना शुरू किया और स्वतंत्रता के बाद भी लिखते रहे।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' समाज के उपेक्षित और प्रायः निम्न वर्ग के पात्रों का चित्रण करते हैं। 'उग्र' व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक भ्रष्टाचार के अनेक रूपों को उभारते हैं, लेकिन कुल मिलाकर उनके व्यंग्य में करुणा अंतर्निहित होती है। निस्संदेह अपने परिवेश की गहरी पहचान उग्र की कहानियों में मिलती है।

जैनेंद्र, अज्ञेय और इलाचंद्र जोशी कहानी की उस धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं जो सामाजिक यथार्थ का चित्रण करने वाली धारा के समानांतर बह रही थी। इन पर फ्रायड के चेतन-अचेतन सिद्धांत का प्रभाव दिखाई पड़ता है। जैनेंद्र का पहला कहानी-संग्रह **फाँसी** 1929 ई. में प्रकाशित हुआ। अज्ञेय ने आतंकवादी पात्रों के अतिरिक्त विदेशी वातावरण की कहानियाँ भी लिखी हैं। उनकी प्रारंभिक कहानियों का संग्रह **विपथगा** 1937 ई. में निकला था। इलाचंद्र जोशी की प्रारंभिक कहानियों में सामाजिक यथार्थ को प्रकट करने का आग्रह मिलता है, किंतु सन 35-36 तक उन पर फ्रायड के मनोविश्लेषण का गहरा असर पड़ गया। उनके कुछ कहानी-संग्रह इस प्रकार हैं– **धूपरेखा, दिवाली और होली, आहुति**।

नाटक

भारतेंदु युग में नाटक साहित्य ही प्रधान साहित्य रूप बन गया था, किंतु बाद में नाट्य-रचनाएँ कम हो गईं। इस क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उनके नाटकों से हिंदी साहित्य में बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हुई। नाट्य-रचना का विधान प्राचीन काव्यशास्त्र में विस्तार से किया गया है। हिंदी नाटककारों ने उस विधान को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया।

इस काल में ऐतिहासिक नाटक लिखने की धूम रही। जयशंकर प्रसाद के अतिरिक्त हरिकृष्ण प्रेमी, गोविंद वल्लभ पंत, सेठ गोविंद दास आदि ने ऐतिहासिक नाटक लिखे। 'उग्र' ने **महात्मा ईसा** नामक साहसपूर्ण नाटक लिखा। सामाजिक समस्याओं पर नाटक लिखने वालों में लक्ष्मीनारायण मिश्र, उपेंद्रनाथ अश्क तथा भुवनेश्वर प्रमुख हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा ने ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार के नाटक लिखे। इसी समय एकांकियों का भी प्रचलन हुआ और रेडिया नाटक का भी। प्रसाद जी के नाटकों का क्षेत्र प्राचीन हिंदू काल है और प्रेमी जी का मुस्लिम काल।

प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों पर अपने समय अर्थात 20वीं शती की समस्याओं का पूरा प्रभाव है। उनके नाटक राष्ट्रीयता, अतीत गौरव की भावना से पूर्ण हैं। सांप्रदायिक एकता, विश्वबंधुत्व की भावना भी दिखाई पड़ती है जिसे अंतर्राष्ट्रीय भावना भी कह सकते हैं। **चंद्रगुप्त** (1931) में एक ओर तो राजनीतिक चालें और चाणक्य का सूत्र-संचालन है और दूसरी ओर उसका इन सबसे विरक्त ब्राह्मण-व्यक्तित्व है। इससे उस पात्र में अंतर्द्वंद्व तो आ ही गया है, शील वैचित्र्य भी आ गया है। **स्कंदगुप्त** (1928) की देवसेना ठेठ छायावादी पात्र है। प्रसाद के नाटकों में उनका कवि मुखर है। उनके कुछ श्रेष्ठ गीत इन नाटकों में यत्र-तत्र दिखलाई पड़ते हैं। प्रसाद नारी रूप के विश्वसनीय जानकार हैं। भारतीय नारी के शोषण के प्रति क्षोभ को ही व्यक्त करने के लिए उन्होंने **ध्रुवस्वामिनी** (1933) लिखा जिसमें कायर पति को त्याग कर एक प्राचीन हिंदूरानी अपने देवर का वरण करती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रसाद इस नाटक के द्वारा उचित कारण होने पर पुनर्विवाह के विधान को उचित ठहरा रहे हैं।

हरिकृष्ण प्रेमी के **शिवासाधना** और **रक्षाबंधन** नाटक प्रसिद्ध हैं। श्री प्रेमी के नाटकों के कथोपकथन स्वाभाविक हैं। **शिवासाधना** छत्रपति शिवाजी के जीवन पर है और

रक्षाबंधन इस प्रसिद्ध ऐतिहासिक जनश्रुति पर कि मेवाड़ की महारानी कर्मवती द्वारा राखी भेजने पर हुमायूँ ने गुजरात शासक बहादुरशाह को युद्ध में पराजित करके अपनी धर्म-बहन की रक्षा की थी। दोनों नाटकों पर स्वाधीनता आंदोलन के विचारों का प्रभाव स्पष्ट है। सेठ गोविंद दास के **कर्तव्य** में राम और कृष्ण दोनों के चरित्रों को एक ही नाटक में गूँथ दिया गया है और दिखाया गया है कि राम लोकहित का पालन मर्यादा के द्वारा करते हैं और कृष्ण अपनी अवसरानुकूल रणनीति द्वारा। गोविंद वल्लभ पंत का सबसे प्रसिद्ध नाटक **राजमुकुट** है जो पन्ना धाय के अपूर्व त्याग की कथा पर आधारित है। उदयशंकर भट्ट ने पौराणिक आधार लेकर **राधा, विश्वामित्र** और **मत्स्यगंधा** आदि रीति नाटकों की रचना की।

हिंदी नाटक को एक नया मोड़ लक्ष्मीनारायण मिश्र ने **मुक्ति का रहस्य** (1932) और **सिंदूर की होली** (1934) लिखकर दिया। दोनों समस्या नाटक हैं। समस्या नाटक से तात्पर्य ठेठ समकालीन जीवन की समस्याओं से है जो बहुत कुछ व्यक्ति के मनोजगत से संबद्ध है। इनमें भावुकता से भरसक बचा गया था।

हास्य रचनाकार जी.पी. श्रीवास्तव नाटकों के क्षेत्र में भी सक्रिय रहे। उन्होंनें अनेक प्रहसन लिखे, जिनमें से **दुमदार आदमी** अधिक प्रसिद्ध है।

प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के बाद प्रगतिशील रचनाकारों का ध्यान नाटकों की ओर भी गया। 1939 ई. के आस-पास जन नाट्य संघ (इप्टा) की स्थापना हुई। इसमें अनेक प्रतिभाशाली रंगकर्मी शामिल हुए। यह जन नाट्य संघ अपने आपको जनक्रांति से जोड़ता था। इसने अनेक भारतीय भाषाओं की रचनाओं का हिंदी में अनुवाद कराया और मौलिक नाटकों की रचना को भी प्रेरित किया। बलराज साहनी के नाटक **मशाल** और **जादू की कुर्सी**, ख्वाजा अहमद अब्बास का नाटक **मैं कौन हूँ**, अश्क का **तूफ़ान से पहले** और शील के नाटक **बेकारी, संघर्ष, किसान** जन नाट्य संघ द्वारा अभिनीत किए गए।

इस दौर में एकांकी नाटकों का प्रचलन बढ़ा। प्रसाद के **एक घूँट** को अनेक विचारकों ने एकांकी कहा। रामकुमार वर्मा, उपेंद्रनाथ अश्क, भुवनेश्वर आदि ने एकांकी साहित्य की श्री वृद्धि की। रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित **एक तोले अफीम की कीमत, दस मिनट, स्वर्ग का कमरा** आदि प्रसिद्ध एकांकी हैं। अश्क ने **चरवाहे, लक्ष्मी का स्वागत, सूखी डाली, पहेली** आदि लिखे। भुवनेश्वर के अधिकांश एकांकी विकृत स्थितियों को लेकर

लिखे गए हैं। **स्ट्राइक, प्रतिभा का विवाह** उनके उल्लेखनीय एकांकी हैं। एकांकी विधा की उपयोगिता रेडियो का प्रचार होने के बाद और बढ़ी क्योंकि वहाँ निश्चित समय में ही संवाद और ध्वनि के द्वारा नाटक पूरा कर देना होता है।

समालोचना

आचार्य रामचंद्र शुक्ल (1884-1941) हिंदी के सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वाधिक विश्वसनीय आलोचक हैं। इन्होंने हिंदी आलोचना को गुण-दोष कथन की रूढ़ियों से उठाकर उसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर प्रदान किया। इसके लिए उन्होंने भारी तैयारी की, जिसमें **हिंदी शब्द-सागर** का निर्माण करने की प्रक्रिया में वे हिंदी भाषा और साहित्य के स्वरूप के मर्मज्ञ बने। उसकी भूमिका लिखने की प्रक्रिया में उन्होंने हिंदी साहित्य का प्रथम वैज्ञानिक इतिहास (1929 ई.) लिखा।

शुक्ल जी ने हिंदी समालोचना में प्रमुखतः दो काम किए – एक प्राचीन काव्यशास्त्र की पुनर्व्याख्या करके उसे फिर से रचनात्मकता के लिए संदर्भवान बनाया। जिस तरह उन्होंनें काव्यशास्त्र को वर्तमान बोध एवं सहृदयता के लिए संदर्भवान बनाया, उसी प्रकार प्राचीन साहित्य को वर्तमान बोध एवं सहृदयता के लिए। जिस अर्थ-विस्तार को आलोचना का वास्तविक कार्य कहा जाता है, वह शुक्ल जी ने अनेक कवियों विशेषतः जायसी, तुलसी और सूरदास की समीक्षा के माध्यम से किया। वे विश्लेषण-विवेचन के उपरांत विवेच्य रचनाकार की उस विशेषता को ढूँढ़ लेते हैं जो अन्य से उसे अलग या विशिष्ट बनाती है। उन्होंने तुलसी को 'लोकमंगल' का, सूर को 'जीवनोत्सव' का, जायसी को 'प्रेम की पीर' का कवि कहा। तुलसी और सूर पहले से ही लोकप्रिय थे। शुक्ल जी ने उनके काव्योत्कर्ष को परीक्षित और प्रमाणित किया। दूसरे, अपनी व्यावहारिक आलोचना की प्रक्रिया में उन्होंने अनेक आलोचना संबंधी पारिभाषिक शब्दों को नई अर्थवत्ता से युक्त किया, अनेक पारिभाषिक शब्दों का निर्माण किया। रस, आनंद, करुणा जैसे शब्दों में उन्होंने नई अर्थवत्ता भरी। लोकमंगल, कर्म-सौंदर्य, गल्प-प्रबंध, शीलदशा, जैसे पदों का निर्माण किया। इंद्रिय बोध, संवेदन, विचार, वासना, संस्कार, भाव आदि पर मौलिक विचार करके हिंदी काव्यशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र की नींव रखी।

शुक्लोत्तर समालोचकों ने शुक्ल जी का महत्त्व स्वीकार करते हुए भी उनसे कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर मतभेद प्रकट किया। **हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी** में

नंददुलारे वाजपेयी ने शुक्ल जी के छायावाद-रहस्यवाद विषयक विचारों की आलोचना की। वे छायावाद के प्रारंभिक और प्रबल समर्थक थे। उन्होंने छायावाद के आध्यात्मिक पक्ष को स्वीकार करते हुए भी यह प्रकट किया कि छायावाद की मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है। उन्होंने छायावाद का संबंध बीसवीं शताब्दी की वैज्ञानिक और भौतिक प्रगति से जोड़ा।

वाजपेयी जी मध्य कालीन साहित्य के भी जानकार थे। उन्होंने सूरदास पर भी पुस्तक लिखी है, यद्यपि उनका आलोचनात्मक योगदान आधुनिक काल की ही समीक्षा में हैं। उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त, रत्नाकर, महावीर प्रसाद द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद पर जो निबंध लिखे हैं वे अपनी सूक्ष्मदर्शिता में बेजोड़ हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी (1907-1979) की **हिंदी साहित्य की भूमिका** शुक्ल जी के ज़ीवनकाल में ही 1940 ई. में निकली। उनकी दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक **कबीर** 1942 ई. में प्रकाशित हुई। द्विवेदी जी ने भक्ति का सामाजिक-ऐतिहासिक आधार प्रस्तुत करते हुए घोषणा की कि यदि इस्लाम न आया होता तो भी हिंदी साहित्य का अधिकांश वैसा ही रहता। उन्होंने हिंदी साहित्य के इतिहास को लोक जीवन के संदर्भ में देखने का प्रस्ताव किया।

हजारी प्रसाद द्विवेदी को कबीर की जुलाहा जाति, वर्ण-व्यवस्था के प्रति उनके विद्रोह-आक्रोश को समझाने की आवश्यकता पड़ी। द्विवेदी जी ने कबीर को साहित्यिक भूमि पर नए सिरे से प्रतिष्ठित किया। द्विवेदी जी की पहली किताब सूरदास पर थी, जिसमें उन्होंने राधा-कृष्ण के प्रेम की अलौकिकता की सहृदयतापूर्ण व्याख्या की थी।

द्विवेदी जी हिंदी के अलावा संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, बँगला भाषा के भी मर्मज्ञ थे। कालिदास उनके प्रिय कवि थे। उन्होंने कालिदास पर एक स्वतंत्र पुस्तक लिखी है जिसमें कालिदास की रचना-प्रक्रिया को समझाने का प्रयास किया गया है। द्विवेदी जी ने कालिदास द्वारा प्रयुक्त अनेक शब्दों की ही सहायता से कालिदास की कविता की व्याख्या की है और अनेक गुत्थियाँ सुलझाई हैं।

डॉ. नगेंद्र (1915-1999 ई.) ने **सुमित्रानंदन पंत** (1938) और **साकेत : एक अध्ययन** (1939) पुस्तकें लिखीं। इन दोनों पुस्तकों में पंत और मैथिलीशरण गुप्त के काव्य की सहृदयता के साथ समीक्षा की गई है। आगे चलकर डॉ. नगेंद्र ने रीति काल पर

अनुसंधान किया और रस सिद्धांत पर ग्रंथ लिखा। उन्होंने कामायनी, उर्वशी एवं महादेवी वर्मा, जैनेंद्र कुमार, बच्चन, नरेंद्र शर्मा की कृतियों पर भी आलोचनात्मक निबंध लिखे हैं।

शुक्लानुवर्ती आलोचकों में विश्वनाथ प्रसाद मिश्र और कृष्ण शंकर शुक्ल उल्लेखनीय हैं। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की पुस्तक **बिहारी की वाग्विभूति** (1936) स्वाधीनता के पूर्व निकल चुकी थी। उनका काम विशेषतः संपादन और टीका के क्षेत्र में रहा। कृष्ण शंकर शुक्ल ने रत्नाकर और केशव पर उल्लेखनीय कार्य किया। शांतिप्रिय द्विवेदी काव्योचित भाषा में आलोचना लिखते थे। उन्हें प्रभाववादी आलोचक माना जाता है। प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी वर्मा ने भी अनेक लेखों के माध्यम से काव्यालोचना करके हिंदी समीक्षा को समृद्ध किया।

1936 ई. में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के बाद हिंदी में मार्क्सवादी आलोचना का उदय हुआ। 1937 ई. में **विशाल भारत** में शिवदान सिंह चौहान का **भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता** नामक लेख प्रकाशित हुआ। इसमें हिंदी साहित्य की पड़ताल की गई है और समय की माँग को ध्यान में रखते हुए प्रगतिशील साहित्य की रचना की आवश्यकता बताई गई है। इस प्रकार मार्क्सवादी आलोचना का उदय 1940 ई. के पूर्व ही हो चुका था। प्रकाशचंद्र गुप्त और डॉ. रामविलास शर्मा ने इस धारा को आगे बढ़ाया। प्रारंभ में मार्क्सवादी आलोचना एक प्रकार के निषेधात्मक एवं अतीत विरोध की भावना से ग्रस्त थी। डॉ. रामविलास शर्मा मार्क्सवादी आलोचकों के दल में बाद में आए। भारतेंदु, निराला और प्रेमचंद पर उनकी पुस्तकें स्वतंत्रता के पूर्व ही आ चुकी थीं, किंतु उनका महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक लेखन बाद में सामने आया।

काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग की स्थापना के साथ ही पाठ्यपुस्तकीय आलोचना का, जिसे अब प्राध्यापकीय आलोचना कहते हैं, उदय हुआ। इसके प्रवर्तक बाबू श्यामसुंदर दास थे। उन्होंने पाठ्यपुस्तकों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए भाषा-विज्ञान आदि नए विषयों पर पुस्तकें लिखीं या तैयार करवाईं। **साहित्यालोचन** सैद्धांतिक समालोचना का ग्रंथ है जिसमें संस्कृत, हिंदी और अंग्रेज़ी साहित्यालोचन का सुलभ संग्रह है। आगे चलकर इस दिशा में लेखन करने वालों में बाबू गुलाबराय विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। विश्वविद्यालयों और हिंदी विभागों में विद्यार्थियों की बढ़ती हुई संख्या को देखते हुए ऐसे कार्य के महत्त्व से इनकार नहीं किया जा सकता।

निबंध

हम पहले देख चुके हैं कि रामचंद्र शुक्ल के निबंध महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित **सरस्वती** में छपने लगे थे। उन्होंने निबंध में प्रस्तुत सूत्रों की उपमा पत्ते की नसों से दी है, जो परस्पर गुँथी होती हैं। शुक्ल जी के अधिकांश प्रसिद्ध निबंध मनोविकारों पर हैं। उन्होंने भारतेंदु, प्रेमघन, फ्रेडरिक पिंकाट पर भी लिखा है, लेकिन वे या तो व्यक्तित्व-कृतित्व का परिचय देने वाले हैं, या संस्मरण या जीवनीपरक। निबंधकार के रूप में शुक्ल जी का योगदान मनोविकार संबंधी निबंधों के कारण है। इन निबंधों का संग्रह पहले **विचार-बीथी** के नाम से 1930 ई. में प्रकाशित हुआ था। बाद में **चिंतामणि (पहला भाग)** नाम से 1939 ई. में परिवर्धित और संशोधित संस्करण प्रकाशित हुआ।

शुक्ल जी के निबंध गंभीर एवं विचारपरक होते हैं। मनोविकारों की परिभाषा करना कठिन होता है। किंतु शुक्ल जी प्रायः निबंध का प्रारंभ परिभाषा से करते हैं। वे कोई सूत्र एक वाक्य में प्रस्तुत कर देते हैं और फिर उसकी व्याख्या में प्रवृत्त होते हैं। व्याख्या करके वे आवश्यकतानुसार सामान्य जीवन-खंड से कोई दृष्टांत भी प्रस्तुत कर देते हैं। इससे निबंध का वह सूत्र हृदयंगम हो जाता है।

अतीत में रमने की प्रवृत्ति महाराज कुमार रघुवीर सिंह के इतिहासपरक निबंधों में मिलती है। उनके निबंधों का संग्रह **शेष स्मृतियाँ** के नाम से प्रकाशित हुआ।

छायावादी कवियों में प्रसाद के निबंध **काव्य कला तथा अन्य निबंध** में और निराला के निबंध **प्रबंध प्रतिमा, चाबुक** आदि में संगृहीत हैं। प्रसाद के निबंधों में गंभीर अध्ययन के साथ-साथ विचारों की गहराई दिखलाई पड़ती है। प्रसाद ने इन निबंधों में हिंदी साहित्य की अनेक प्रवृत्तियों पर मौलिक विचार प्रस्तुत किए हैं। इनका आलोचनात्मक महत्त्व अधिक है। निराला के निबंधों में सामाजिक, साहित्यिक सरोकार के साथ व्यंग्य और क्षोभ मिलता है। महादेवी वर्मा के साहित्यिक निबंध महादेवी के विवेचनात्मक गद्य में संकलित हैं जिनमें उन्होंने छायावाद, यथार्थवाद आदि पर विचार किया है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों का पहला संकलन **विचार और वितर्क** 1945 ई. में प्रकाशित हुआ और **अशोक के फूल** 1948 ई. में। द्विवेदी जी निबंधों की रचना स्वातंत्र्योत्तर भारत में भी करते रहे। किंतु लिखना उन्होंने इसी दौर में प्रारंभ किया। द्विवेदी जी के जैसे निबंध हिंदी में पहले नहीं लिखे गए थे। उन्होंने निबंध विधा को अपने

लेखन से सर्जनात्मक साहित्य की कोटि में परिगणनीय बना दिया। उनके निबंध मूलतः भारत के सांस्कृतिक इतिहास की पुनर्रचना करते हैं। **अशोक के फूल** उनका प्रतिनिधि निबंध कहा जा सकता है। वे पहले इस फूल का सौंदर्य बताते हैं, फिर उसका इतिहास, उस इतिहास के बहाने मध्य काल का सांस्कृतिक इतिहास, तत्कालीन जीवन और फिर सामंती वैभव का खोखलापन, उसकी अमानवीयता। अंत में अशोक के फूल की वर्तमान उपेक्षा। इन सबसे वह इतिहास की दुर्दांत और निर्मम धारा का प्रभाव पाठकों के दिल पर छोड़ जाते हैं। यह प्रभाव रचनात्मक कृतियों के प्रभाव जैसा होता है।

द्विवेदी जी की एक बहुत बड़ी शक्ति है पांडित्य को पीछे रखकर सहज हो पाने की क्षमता। वे बड़ी से बड़ी बात को सरल-सहज शैली में कहकर पाठक का विश्वास अर्जित कर सकते हैं। उनकी शैली अनौपचारिक होती है। उसमें पांडित्य और लोक जीवन का सहज प्रवाह दोनों हैं।

जैनेंद्र कुमार, सियारामशरण गुप्त, राहुल सांकृत्यायन, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बाबू गुलाबराय, सद्गुरुशरण अवस्थी आदि इस युग के अन्य उल्लेखनीय निबंधकार हैं। शिवपूजन सहाय सहज, सरल शैली के गद्यकार थे। **हिमालय, बालक** और **मतवाला** के संपादक के रूप में उन्होंने हिंदी के उन्नयन में महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

कविता : छायावाद

इस युग की काव्यधारा की प्रधान प्रवृत्ति को छायावाद की संज्ञा दी जाती है। हिंदी कविता के क्षेत्र में छायावाद का उल्लेख 1920 ई. के आस-पास मिलने लगता है। शुक्ल जी इसे रवींद्रनाथ ठाकुर की कविताओं के प्रभाव से आया हुआ मानकर इसका संबंध ईसाई संतों के फैंटैसमाटा (छायाभास) शब्द से जोड़ते थे। उन्होंने छायावाद को चित्र भाषा-शैली भी कहा। नंददुलारे वाजपेयी ने इसका संबंध युग-बोध से जोड़ते हुए भी इसे व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भान कहा। डॉ. नगेंद्र ने छायावाद को 'स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह' माना। डॉ. नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक **'छायावाद'** में दिखाया कि छायावाद कई काव्य प्रवृत्तियों का सामूहिक नाम है और वह 'उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति पाना चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से।'

छायावाद साम्राज्यवाद विरोधी मानवतावादी काव्यधारा है। वह व्यक्ति के सुख-दुख का उदात्तीकरण कर देता है। प्रसाद ने **आँसू** के उत्तरार्ध में आँसू की घनीभूत पीड़ा को 'दुःख दावा से दग्ध विश्व की पीड़ा' से जोड़कर इस जग के वृंदावन बन जाने की कामना की। उनकी **कामायनी** शक्तिशाली और विजयी बनने का आह्वान करती है– 'शक्तिशाली हो विजयी बनो विश्व में गूँज रहा जयगान'। निराला ने **शिवाजी का पत्र** में मुगल शासन को साम्राज्यवादी कहा। **राम की शक्ति पूजा** में 'अन्याय जिधर है उधर शक्ति' लिखकर अन्यायी और शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्यवाद से निपटने के लिए केवल धर्म, न्याय और विवेक को अपर्याप्त बताते हुए 'शक्ति की आराधना' का प्रस्ताव किया।

छायावाद व्यक्ति के मानस को उड़ने के लिए कल्पना का अनंत आकाश देता था। वह दीन-दलित के दुःख से व्यथित भी होता था। उसने अपने परिवेश, देश की प्रकृति, नदी, पर्वत, खेत, खलिहान, इतिहास पुराण– सबको नई दृष्टि से देखा। उन सबकी नई पहचान बनाई। उसने प्रकृति की भाँति नारी को भी कल्पना से निर्मित किया और यथार्थ की दृष्टि से भी। कुल मिलाकर इस युग का साहित्य यथार्थ की विषम भूमि पर भावी भारत को रचने के स्वप्न का साहित्य है। इसमें शक्ति एवं मंगल की भावना है।

छायावाद के प्रमुख कवियों – प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है –

जयशंकर प्रसाद (1889-1937)

प्रसाद जी का जन्म काशी के प्रतिष्ठित व्यापारी परिवार में हुआ। इन्होंने प्रारंभिक काव्य-रचना ब्रजभाषा में की। ये मूलतः आनंद के कवि हैं। अपने मन के गहरे विषाद को इन्होंने **आँसू** में लोकमंगल की भावना से जोड़ा है। जयशंकर प्रसाद टीस-कचोट और जगत की नश्वरता के कवि हैं। कभी-कभी उनमें सूफी कवियों जैसी उत्कट वेदना का भाव पाया जाता है। वे एक दार्शनिक कवि हैं। उन्होंने अपने इतिहास और दर्शन के ज्ञान को **कामायनी** में प्रबंध योजना से समन्वित करके अभिव्यक्त किया है। **कामायनी** मानव के बाह्य और आंतरिक विकास का कथा-काव्य है, जो अंत में शैव आनंदवादी दर्शन में समाधान ढूँढ़ता है, यद्यपि इस विशद कृति पर अनेक आधुनिक विचारों का प्रभाव है। इनकी प्रसिद्ध काव्य कृतियाँ हैं – **काननकुसुम, प्रेमपथिक, महाराणा का महत्त्व, चित्राधार, आँसू, झरना, लहर, कामायनी।**

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (1899-1961 ई.)

निराला का जन्म महिषादल राज्य (बंगाल) में हुआ। उनका गाँव गढ़ाकोला उन्नाव ज़िले के अंतर्गत पड़ता है। निराला ओज, औदात्य एवं विद्रोह के कवि हैं। उन पर वेदांत और रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानंद के दर्शन का प्रभाव रहा है। इसलिए उनकी कविताओं में रहस्यवाद भी मिलता है। निराला अकुंठ शृंगार तथा तृप्ति के कवि हैं। वे सुख-दुख दोनों को भरपूर देखकर उससे ऊपर उठकर चित्रण करने की क्षमता रखते हैं। उनकी कविताओं में बौद्धिकता का भरपूर दबाव है। अपने युग का विषम यथार्थ और उससे उबरने की साधना उनकी तीन प्रबंधात्मक दीर्घ कविताओं – **तुलसीदास, सरोज स्मृति** और **राम की शक्तिपूजा** में प्रकट हुई है। **सरोज स्मृति** उनकी कन्या सरोज की मृत्यु पर लिखी गई कविता है। अपनी कन्या के बचपन और किशोरावस्था का ऐसा अकुंठ और संयमित वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है।

निराला हिंदी में मुक्त छंद के लिए प्रसिद्ध हैं। वे स्थितियों के संश्लेष से कम-से-कम शब्दों द्वारा अधिक-से-अधिक भाव प्रकट करते हैं। नाद योजना का उनकी काव्यात्मकता में विशिष्ट स्थान है।

निराला में प्रारंभ से ही छायावाद के साथ-साथ सरल और बोलचाल की भाषा में जीवन के विषम यथार्थ को अभिव्यक्त करने की प्रवृत्ति रही है। यह महत्त्व निराला को ही प्राप्त है कि नई हिंदी कविता की सभी प्रवृत्तियों के कवि अपना संबंध निराला से जोड़ने में गौरव का अनुभव करते हैं। उनकी प्रसिद्ध काव्य कृतियाँ हैं – **अनामिका, परिमल, गीतिका, अपरा, कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नए पत्ते** आदि।

सुमित्रानंदन पंत (1900-1977 ई.)

पंत जी का जन्म अल्मोड़ा ज़िले (उत्तरांचल) के कौसानी नामक मनोरम स्थान पर हुआ। उनकी कविता में प्रकृति को विशेष महत्त्व प्राप्त है। पंत प्रधानतः संवेदनशील इंद्रिय बोध के कवि हैं। छायावादी कवियों में सबसे सहज अतः तत्काल स्वीकार्य तथा लोकप्रिय होने वाले कवि पंत थे। उनकी कविता ने छायावाद को प्रतिष्ठित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। उनकी काव्य-चेतना ने कई मंज़िलें तय की हैं। युग-बोध के अनुसार अपनी काव्य भूमि को विस्तार करते रहना पंत की काव्य चेतना की विशेषता है। प्रारंभ

में वे प्रकृति सौंदर्य से अभिभूत थे, फिर मानव सौंदर्य से। मानव सौंदर्य ने उन्हें समाजवाद की ओर आकृष्ट किया। समाजवाद से वे अरविंद दर्शन की ओर प्रवृत्त हुए। वे मानववादी कवि थे, जो मानव इतिहास के नित्य विकास में विश्वास करते थे। वे अतिवादिता एवं संकीर्णता के घोर विरोधी रहे। उनका अंतिम काव्य **लोकायतन** है जो उनके परिपक्व चिंतन को समेट देता है। उनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं – **उच्छ्वास, पल्लव, वीणा, ग्रंथि, गुंजन, युगांत, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्णधूलि, स्वर्णकिरण।**

महादेवी वर्मा (1907-1987 ई.)

महादेवी जी का जन्म फर्रुखाबाद, उत्तर-प्रदेश में हुआ। महादेवी वर्मा की कविताओं में करुणा की भावना प्रधान है। उन पर बौद्ध दर्शन का भी प्रभाव है। आतुरता, प्रतीक्षा, समर्पण, जिज्ञासा उनकी कविताओं की प्रमुख भावनाएँ हैं। उनमें नारी-सुलभ सतर्क संकोच भी है, जिससे उनकी कविताओं की दोहरी व्याख्या होती है, कभी उन्हें शृंगारी समझा जाता है कभी रहस्यवादी। वस्तुतः महादेवी की कविताएँ भारतीय नारी की मानसिकता की उपज हैं। उनकी कविताओं की करुणा का संबंध लोक में व्याप्त और उनके निजी दुख से है। उस दुख के दूर होने की उनमें प्रबल आकांक्षा है। 'मैं नीर भरी दुख की बदली' उनकी प्रतिनिधि पंक्ति कही जाती है, किंतु उन्हीं की एक प्रसिद्ध पंक्ति है – 'रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ।' दीपक और बादल उनके प्रिय प्रतीक हैं। गीत रचना में उन्हें विशेष सफलता मिली है। उनकी प्रसिद्ध काव्य रचनाएँ हैं – **नीहार, नीरजा, सांध्यगीत, यामा, दीपशिखा।**

छायावादी पद्धति पर कविता करने वालों में जानकी वल्लभ शास्त्री, रामकुमार वर्मा आदि अन्य कवि उल्लेखनीय हैं।

छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

- छायावाद व्यक्तिवादी काव्य है, अर्थात वह व्यक्तिमन को कल्पना की उड़ान का पूरा अवकाश देता है।
- छायावाद में कल्पना की अतिशयता है। छायावाद की कल्पना का संबंध तत्कालीन स्वाधीनता की मानसिकता से है।

- इस काव्य में जिज्ञासा की भावना है। परम सत्य को जानने की इच्छा से रहस्य भावना पैदा होती है।
- छायावादी कवि परिचित वस्तुओं में अपरिचित सौंदर्य देखता है।
- छायावादी काव्य का स्वाधीनता-आंदोलन से गहरा संबंध है। वह शक्ति, मंगल एवं जागरण का काव्य है।
- छायावादी कविता में प्रकृति एवं नारी को स्वाधीन-मानसिकता से चित्रित किया गया। छायावादी कविता में नारी और प्रकृति बहुत कुछ स्वप्निल है।
- छायावादी काव्य कोमलकांत पदावली का काव्य है। इसका अर्थ यह है कि शब्द-संयोग से उसकी काव्यभाषा ध्वनि की आवर्तें और अनुगूँज उत्पन्न करती है।
- छायावादी कविता में छंद के साथ मुक्त छंद का प्रयोग जमकर हुआ।

छायावादोत्तर काव्य

छायावाद के अंत की घोषणा छायावादी कवियों ने ही कर दी थी। निराला **राम की शक्ति पूजा** की तत्सम पदावली छोड़कर **कुकुरमुत्ता, महँगू महँगा रहा** जैसा काव्य रचकर समाज के निम्न वर्ग की दारुण स्थिति का चित्र बोलचाल की भाषा में खींच रहे थे और पंत ने तो **युगांत** की घोषणा ही कर दी थी। छायावाद में वैयक्तिक और सामाजिक दोनों प्रवृत्तियों का समन्वय था। छायावादी कवि निजी स्वर में ही सही किंतु साम्राज्यवाद और सामंतवाद का विरोध कर रहे थे। छायावादोत्तर युग में दो प्रवृत्तियाँ अलग दिखलाई पड़ती हैं। एक प्रवृत्ति मस्ती के आलम का गीत गाती है। इसे समाज विरोधी नहीं कह सकते क्योंकि ये कवि व्यक्तिगत अनुभूतियों के स्तर पर ही सही व्यवस्था की जकड़न का विरोध करते हैं। अनुभूति-प्रधान होने के कारण इन्होंने गीत की विधा अपनाई है। इनमें से अधिकांश कवि, कवि-सम्मेलनों में बहुत लोकप्रिय हुए। इनकी कविताओं में प्राचीनता का विरोध, मस्ती, नश्वरता की अनुभूति, सभी प्रकार की संकीर्णता का विरोध और सबसे तटस्थता – कुल मिलाकर सबसे विराग, सब पर ममता वाला भाव मिलता है। इसे 'विरोध का काव्य' कहेंगे। यहाँ स्वच्छंदता मस्ती बन गई है। इसीलिए इस धारा के प्रतिनिधि कवि हरिवंशराय बच्चन (1907-2003 ई.) की कविताओं को 'हालावाद' कहा गया। उनकी कविताओं में 'हाला' की चर्चा भी बहुत होती थी। यहाँ

'हाला' व्यवस्था-विरोध का प्रतीक है, बहुत कुछ फारसी-उर्दू कविता की तरह। बच्चन ने सरस, सहज गीतों के माध्यम से धार्मिक-सामाजिक संकीर्णता का विरोध किया और उद्दाम भावनाओं की अकुंठ अभिव्यक्ति की। इस प्रवृत्ति के काव्य की प्रतिनिधि पंक्ति हैं –

हम दीवानों की क्या हस्ती, है आज यहाँ कल वहाँ चले।
मस्ती का आलम साथ चला, हम धूल उड़ाते जहाँ चले।।

यह पंक्ति मस्ती के दूसरे गायक भगवती चरण वर्मा की है। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', दिनकर, नरेंद्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', गोपालसिंह नेपाली में भी यह मस्ती पाई जाती है। किंतु इनमें से अधिकांश प्रगतिशील भावनाओं के कवि हैं। छायावादी काव्यधारा के समानांतर राष्ट्रीय भावनाओं की एक ऐसी भी काव्यधारा चल रही थी जिसमें कल्पना की उतनी उड़ान और लाक्षणिक प्रतीकात्मकता नहीं थी, किंतु राष्ट्रीय भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति थी। ऐसे कवियों में नवीन, दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान प्रमुख हैं। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', दिनकर और माखनलाल चतुर्वेदी प्रधानतः राष्ट्रीय भावनाओं के ओजस्वी कवि हैं। इन कवियों की वाणी अग्निगर्भा है। नवीन और दिनकर छायावादी युग के कवि हैं, किंतु इनकी शैली अपेक्षाकृत सहज है। ये लाक्षणिक प्रतीकात्मकता का उतना उपयोग नहीं करते। नवीन स्वयं स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन की विविध मनःस्थितियों पर उद्बोधपरक और मार्मिक कविताएँ लिखीं हैं। 'आज खड्ग की धार कुंठिता' और 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ' उनकी प्रसिद्ध कविताएँ हैं। स्वतंत्र भारत में उनका प्रबंध काव्य **उर्मिला** छपा।

रामधारी सिंह 'दिनकर' (1908-1974 ई.)

दिनकर ओजस्वी और राष्ट्रीय भावनाओं के कवि के रूप में विख्यात हैं। **रेणुका, हुंकार** आदि उनके प्रसिद्ध काव्य संग्रह हैं। हिमालय पर लिखी गई उनकी कविता अत्यंत प्रसिद्ध हुई। स्वतंत्र भारत में भी वे काव्य रचना में रत रहे। दिनकर में साम्राज्यवाद और सामंतवाद की अमानवीयता के विरुद्ध घोर असंतोष और क्षोभ की भावना थी। वे अहिंसा को सर्वत्र उचित नहीं मानते। स्वतंत्र भारत में उनकी अनेक प्रसिद्ध रचनाएँ छपीं, जिनमें **कुरुक्षेत्र, परशुराम की प्रतीक्षा** और **उर्वशी** प्रसिद्ध हैं। **कुरुक्षेत्र** में युद्ध की समस्या पर विचार किया गया है। स्पष्टतः यह रचना द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका से प्रेरित

है। **उर्वशी** नर-नारी के सनातन यौन संबंधों को मनोविज्ञान की दृष्टि से देखने वाला शृंगारी काव्य है। इसमें ऐतिहासिक दृष्टिकोण भी अपनाया गया है।

माखनलाल चतुर्वेदी (1889-1968 ई.)

चतुर्वेदी जी राष्ट्रीय भावनाओं के ओजस्वी कवि हैं किंतु वे राष्ट्रीय कविताओं में भावनाओं को कभी-कभी इतने सूक्ष्म सादृश्य विधान के आधार पर प्रकट करते हैं कि कविताएँ दुरूह हो जाती हैं और रहस्यमय हो उठती हैं। इस शैली के वे विशिष्ट और अकेले कवि हैं। उन्होंने सहज ढंग से अत्यंत मार्मिक राष्ट्रीय कविताएँ भी लिखीं हैं। **पुष्प की अभिलाषा** ऐसी ही अत्यंत लोकप्रिय एवं प्रेरक कविता है।

नरेंद्र शर्मा (1913-1989 ई.)

नरेंद्र शर्मा ने अनेक उत्कृष्ट कविताएँ लिखी हैं। वे जीवन की जटिल स्थितियों को सरल छंदोबद्ध पंक्तियों में प्रस्तुत करने की क्षमता रखते हैं। प्रकृति चित्रण में वे पंत के अनुगामी हैं। नरेंद्र शर्मा स्वाधीनता आंदोलन के सिलसिले में जेल गए। बाद में वे समाजवादी विचारधारा और प्रगतिशील काव्यधारा से घनिष्ठ रूप से जुड़े। पंत के साथ उन्होंने **रूपाभ** पत्रिका का संपादन भी किया। बाद में वे फिल्मों के लिए गीत लिखने लगे। वहाँ भी उनकी प्रतिभा धूमिल नहीं पड़ी। **पलाश वन, प्रवासी गीत** उनके प्रसिद्ध काव्य संकलन हैं।

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान की राष्ट्रीय और ओजस्वी कविताएँ अत्यंत लोकप्रिय हुईं, विशेषतः **झाँसी की रानी** पर लिखा गया उनका वीर काव्य (बैलेड)। ऐसी प्रसिद्धि शायद ही किसी अन्य कविता को मिली हो। सोहनलाल द्विवेदी ने भी राष्ट्रीय भावनाओं की कविताओं की रचना की।

प्रगतिशील काव्य

1930 ई. के आस-पास राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में नया उभार आया। देश में किसानों-मज़दूरों के आंदोलन तेज़ हुए और कांग्रेस में समाजवादी रुझान प्रभावशाली हुआ। उधर रूस में समाजवादी राज्य की स्थापना हो गई थी और मार्क्सवादी विचारों की लहर

एशिया के देशों में भी चल रही थी। ऐसी स्थिति में 1936 ई. में प्रगतिशील लेखक संघ का अधिवेशन हुआ, जिसके सभापति प्रेमचंद थे। बाद में रवींद्रनाथ ठाकुर, जवाहरलाल नेहरू, श्रीपाद अमृत डाँगे जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति भी इसके सभापति बने। प्रगतिशील चेतना का प्रादुर्भाव तो आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतेंदु के साथ ही हो गया था, किंतु अब उसमें एक सुसंबद्ध विचारधारा के प्रति बहुत आकर्षण उत्पन्न हुआ। इस विचारधारा ने स्वाधीनता के स्वप्न को और अधिक सुस्पष्ट बनाया। इसके बाद अपने सारे उतार-चढ़ाव के बावजूद प्रगतिशील काव्यधारा हिंदी की प्रमुख काव्यधारा बनी हुई है। इस काव्य में व्यापक संवेदनशीलता है। यह काव्यधारा अपना संबंध हिंदी की जातीय परंपरा से जोड़ती है और भावी समाज से भी। वर्तमान के प्रति वह आलोचनात्मक यथार्थवादी दृष्टि अपनाती है।

प्रमुख प्रगतिशील कवियों का परिचय इस प्रकार है –

नागार्जुन (1911-1998 ई.)

नागार्जुन की कविता में परंपरा की मूल्यवत्ता और आधुनिक जीवन की विडंबना दोनों का योग है। नागार्जुन की कविताओं पर इनके मूल जनपद मिथिला का प्रभाव है। ये प्रकृति चित्रण के उत्कृष्ट कवि हैं। इनकी कविताओं में व्यंग्य की अचूक धार होती है। **युगधारा, प्यासी पथराई आँखें, भस्मांकुर, सतरंगे पंखों वाली, खिचड़ी, विप्लव देखा हमने** आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

केदारनाथ अग्रवाल (1911-2000 ई.)

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में जन-संघर्ष को वाणी दी गई है। इन्होंने प्रकृति, नारी सौंदर्य और श्रम सौंदर्य के अभूतपूर्व बिंब प्रस्तुत किए हैं। ये बुंदेलखंड की धरती के कवि हैं। इनकी कविताओं पर निराला का प्रभाव द्रष्टव्य है। **युग की गंगा, नींद के बादल, फूल नहीं, रंग बोलते हैं** आदि इनके उल्लेखनीय काव्य संकलन हैं।

त्रिलोचन (जन्म 1917 ई.)

इनकी कविताओं में जन-जीवन की मार्मिक स्थितियों को आडंबरहीन सहज भाषा में व्यक्त किया जाता है। अवध जनपद इनकी कविताओं में प्रायः सर्वत्र विद्यमान है।

त्रिलोचन हिंदी कविता में व्याकरण सम्मत वाक्य गठन और सॉनेट (छंद) विधान के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं—**धरती, दिगंत, गुलाब और बुलबुल, अरघान, उस जनपद का कवि हूँ** आदि।

शिवमंगल सिंह 'सुमन' (1917-2002 ई.)

शिवमंगल सिंह 'सुमन' प्रगतिशील धारा के लोकप्रिय कवियों में अग्रगण्य हैं। सहजता और उद्‌बोधन इनकी कविताओं का गुण है। इनकी कविता में वक्तृता का गुण पाया जाता है। **हिल्लोल, जीवन के गान, विश्वास बढ़ता ही गया** आदि इनकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

गजानन माधव मुक्तिबोध (1917-1964 ई.)

गजानन माधव मुक्तिबोध मध्यवर्गीय जीवन के आधुनिक कवि हैं। मध्यवर्ग का व्यक्ति सुविधाजीविता और आदर्शवादिता के द्‌वंद्‌व में जीता है। मुक्तिबोध इसी द्‌वंद्‌व के तनाव के कवि हैं। इनकी कविता में असुरक्षा एवं अनिश्चय की भावना प्रधान है जिसका समाधान वे प्रगतिशील दृष्टिकोण से ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं। इनके काव्य संकलन हैं—**चाँद का मुँह टेढ़ा है, भूरी-भूरी खाक धूल**।

प्रगतिवादी कविता ने स्वाधीन भारत की स्थितियों में भी विकास किया और इसकी धारा अवरुद्‌ध नहीं हुई। शील, भारतभूषण अग्रवाल, रांगेय राघव, सोम ठाकुर, नीरज, बलवीर सिंह 'रंग' आदि उल्लेखनीय प्रगतिशील कवि हैं।

प्रगतिशील काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ

- प्रगतिवादी काव्य शोषण का विरोध करता है। उसके अनुसार किसान और मज़दूर एक होकर अपने ऊपर होने वाले सामंतों और पूँजीवादियों के अत्याचार का अंत करेंगे।
- प्रगतिवादी कवि शोषित में शक्ति देखते हैं क्योंकि शोषण इतिहास की गति और सामाजिकता के विपरीत है।
- प्रगतिवादी कवि श्रम में सौंदर्य देखते हैं। उनका सौंदर्य बोध सामाजिक मूल्यों से युक्त है। वे सहज, सामान्य जीवन-स्थितियों में भी सौंदर्य देखते हैं।

- प्रगतिवादी कवि व्यंग्य के द्वारा विषमता का चित्रण एवं उसका विरोध करते हैं।
- प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृति और ग्राम जीवन के अनुपम चित्र खींचे हैं।
- प्रगतिवादी कवियों ने प्रेम को सामाजिक-पारिवारिक रूप में देखा और उसका चित्रण किया।

प्रयोगवाद

1943 ई. में अज्ञेय द्वारा संपादित **तारसप्तक** प्रकाशित हुआ। इसमें सात कवि संकलित थे – गजानन माधव मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, नेमिचंद्र जैन, गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे और अज्ञेय। इनमें से अधिकांश प्रगतिवादी थे। उस समय अज्ञेय भी समाजवादी विचारधारा से अपने को जोड़ते थे। यद्यपि इसमें द्वितीय विश्वयुद्ध से उत्पन्न संदेहवाद, वैज्ञानिक उपलब्धियों से ज्ञात विराट के सम्मुख मनुष्य की नगण्यता आदि का बोध कम-से-कम अज्ञेय की कविताओं में मिलने लगता है। इन कवियों को संपादक ने 'राहों के अन्वेषी' कहा, लेकिन कुल मिलाकर तारसप्तक प्रगतिशील चेतना की कविताओं का संकलन है।

तारसप्तक में संकलित अज्ञेय की कविताओं में पाया जानेवाला मोहभंग हिंदी में प्रयोगवादी कविता का आधार है। अज्ञेय ने **तारसप्तक** में संकलित कवियों को 'राहों के अन्वेषी' कहा था और यह भी कहा था कि ये कवि प्रयोग कर रहे हैं। लोगों ने अज्ञेय के 'प्रयोग' शब्द को पकड़कर मोहभंग की उभरती हुई इस काव्य-प्रवृति को प्रयोगवाद की संज्ञा दी। इसमें अज्ञेय, प्रभाकर माचवे, लक्ष्मीकांत वर्मा आदि कवियों को परिणित किया जाता है।

प्रयोगवाद की प्रवृत्तियाँ

- यह मोहभंग की कविता है। इन कवियों की मानसिकता की पृष्ठभूमि में द्वितीय विश्वयुद्ध के अभूतपूर्व नरसंहार से उत्पन्न सभी प्रकार के आदर्शों से मोहभंग का बोध है।
- आदर्श के स्थान पर यह काव्यधारा यथार्थ में निहित व्यंग्य और विद्रूप को अधिक प्रकट करती है।

- प्रयोगवाद की काव्य शैली में कोष्ठकों, उपवाक्यों का प्रयोग खुलकर किया जाता है।
- ये कवि किसी बनी बनाई लीक पर चलने के बजाए संवेदना और शिल्प के क्षेत्र में प्रयोग करने में अधिक विश्वास करते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य (1947 ई.–)

पृष्ठभूमि

1947 ई. में भारत स्वतंत्र हो गया। भारत खंडित होकर स्वतंत्र हुआ। शुरू में कुछ समय तक भारत की स्वतंत्र सरकार को शरणार्थियों के पुनर्वास और उनकी सुरक्षा की समस्या से उलझना पड़ा। भारत विभाजन के पूर्व और उसके कुछ समय बाद भी भयंकर सांप्रदायिक दंगे हुए जिनमें लाखों आदमी बेघर-बार होकर भारत से पाकिस्तान गए और पाकिस्तान से भारत आए। इतिहास के अति प्राचीन काल से भारत की जो अखंड मूर्ति थी वह खंडित हो गई। हिंदू मुसलमान भाई-भाई कहलाते थे। दंगों में वे एक दूसरे के खून के प्यासे हो गए। हिंदी क्षेत्र को विभाजन का अनुभव दूर से ही हुआ। इसीलिए विभाजन की ऐतिहासिक त्रासदी ने हिंदी साहित्य को अधिक प्रभावित नहीं किया, इस त्रासदी पर जो साहित्य रचा भी गया है वह प्रायः उन्हीं साहित्यकारों द्वारा जो पंजाब के हैं और पाकिस्तान से यहाँ आए हैं।

भारत ने विकास के लिए मिश्र अर्थव्यवस्था को अपनाया और समाजवाद को अपना लक्ष्य घोषित किया। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत ने निर्गुटता की नीति अपनाई। स्वाधीन भारत की मानसिकता के निर्माण में दो प्रक्रियाओं का सर्वाधिक महत्त्व है। एक आम चुनावों का और दूसरी पंचवर्षीय योजनाओं का। इन्होंने स्थितियों में परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारंभ की, उन परिस्थितियों को प्रस्तुत किया, जिन पर स्वाधीनता के उपरांत का साहित्य आधारित है, जिसे स्वातंत्र्योत्तर साहित्य कहा जाता है।

पंचवर्षीय योजनाओं से देश के कोने-कोने में निर्माण कार्य प्रारंभ हुआ। सुदूर क्षेत्रों तक बिजली और मशीनें पहुँचीं। वहाँ हलचल शुरू हुई। भारत के सुदूर क्षेत्र शताब्दियों से 'एकरस' स्थिति में थे। अब वहाँ परिवर्तन होने लगा। प्राचीन विदा होने लगा, नवीन

आने लगा। शिक्षा का प्रसार होने से, रोज़गार के अनेक अवसर मिलने से गाँवों के शिक्षित नवयुवक देहात छोड़कर शहरों में आए। उनके मन को छोड़े गए गाँव की स्मृतियाँ कचोटती थीं। फिर उनके देखे हुए पात्र विदा हो रहे थे। इससे गाँवों के प्रति जो ममता एवं आत्मीयता की भावना पैदा हुई उससे हिंदी साहित्य में आंचलिकता की प्रवृत्ति पैदा हुई। यह आंचलिकता कविता और कथा साहित्य दोनों – यहाँ तक कि निबंध साहित्य और किसी हद तक नाटक में भी पाई जाती है।

देहातों से नगर में बस जाने वाले प्रायः नगर में स्थान की कमी, मँहगाई और बेहतर सुविधाओं को प्राप्त करने की ललक के कारण अपनी पत्नी और बच्चों के ही साथ रह सकते हैं। इससे संयुक्त परिवार टूटने लगा। दूसरी ओर दिनोदिन बढ़ते हुए औद्योगीकरण के कारण नगरों में भीड़-भाड़ बढ़ती ही गई। इससे अपरिचय का वातावरण विकसित हुआ। भारतीय जीवन में अजनबीपन या अकेलेपन का सबसे बड़ा कारण संयुक्त परिवार का टूटना और नगरों या महानगरों का व्यस्त जीवन है, जहाँ एक को दूसरे की सहायता करने की फुर्सत कम रहती है। इस वास्तविक 'अकेलेपन' और 'अजनबीपन' की अभिव्यक्ति साहित्य में होने लगी और उससे 'अस्तित्ववादी' 'अजनबीपन' और 'अकेलापन' जैसे शब्द साहित्य में चल निकले।

स्वाधीनता के उपरांत नारी-शिक्षा के क्षेत्र में अपूर्व विकास हुआ। अब शिक्षित नारियों की संख्या में बहुत बढ़ोतरी हुई है। वे नौकरी भी कर रही हैं। स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों, बैंकों, डॉक्टरी आदि सेवाओं में वे पुरुषों से स्पर्धा करने की स्थिति में आ गई हैं। अब वे आर्थिक तौर पर स्वतंत्र हो रही हैं। इससे पारिवारिक संबंधों में बहुत बदलाव आया है। हमारे साहित्य विशेषतः कथा साहित्य में स्वावलंबी नारी पात्रों का प्रवेश हुआ जिसके कारण नर-नारी के संबंधों, दांपत्य जीवन और संतान पर पड़ने वाले प्रभाव का भी चित्रण नए ढंग से होने लगा।

1947 ई. के बाद धीरे-धीरे स्वाधीनता-संघर्ष का आवेग कम हो गया। सांप्रदायिकता के उन्माद से ग्रस्त एक व्यक्ति ने गांधी की हत्या कर दी। बड़े नेता मंत्रीपद पर विराजमान हो गए। बाहरी सहायता के रूप में योजनाओं के लिए धन आया जिससे निर्माण का काम होना था लेकिन उसके वितरण में भाई-भतीजावाद पनपने लगा। कुछ क्षेत्र उन्नत थे, कुछ पिछड़े हुए। अवसर मिलने पर उनमें परस्पर स्पर्धा का भाव पैदा हुआ जिससे क्षेत्रीयता और भाषागत संकीर्णता की भावना बढ़ी। संविधान ने हिंदी को संपर्क-भाषा और राजभाषा

के रूप में स्वीकार कर लिया। किंतु अंग्रेज़ी का वर्चस्व बना ही रहा क्योंकि देश में बड़े पूँजीपतियों और विदेशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अंग्रेज़ी में कामकाज करने में सुविधा थी। काले धन का विस्तार बहुत तेज़ी से हुआ। इन सब बातों के कारण स्वाधीनता आंदोलन के दिनों के बनाए हुए सिद्धांत और आदर्श पीछे ही नहीं छूट गए, उनका अवसरवादी उपयोग भी होने लगा। कथनी और करनी के अंतर के कारण व्यंग्य-विडंबना की नाटकीय स्थिति उत्पन्न हुई। भाषा का सहज अर्थ खो गया। ठीक अर्थ जानने के लिए संदर्भ की पहचान और काइयाँपन की ज़रूरत पड़ने लगी। स्वाधीनता के उपरांत इसी मोहभंग, व्यंग्य, विडंबना और असुरक्षा की भावना की अभिव्यक्ति साहित्य में हुई है।

प्रगतिवादी धारा पहले से चली आ रही थी। स्वाधीनता के बाद के प्रारंभिक वर्षों में केंद्रीय सरकार और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी में टकराहट की स्थिति आई। तेलंगाना में सशस्त्र किसान-विद्रोह भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में चला। इन्हीं दिनों हिंदी-साहित्य पर अस्तित्ववादी विचारों का प्रभाव भी पड़ने लगा। व्यक्ति-स्वातंत्र्य और राजसत्ता के विरोध का स्वर हिंदी साहित्य विशेषतः कविता के क्षेत्र में सुनाई पड़ने लगा।

इतिहास की व्यर्थता, क्षणवाद, साहित्य की शुद्धता, निजता की सुरक्षा आदि का नारा इसी क्षेत्र से आया। इन विचारों के प्रचार के लिए पत्र-पत्रिकाएँ भी निकलीं और उनका प्रभाव भी रहा। किंतु देश की वास्तविक स्थितियाँ अस्तित्ववादी विचारधारा की नहीं, समाजवादी विकास की मांग करती थीं, क्योंकि हमारा देश आर्थिक तौर पर पिछड़ा किंतु अपार संभावनाओं का है। हम अपने गौरवशाली इतिहास एवं मानवीय परंपराओं को भूल नहीं सकते। इसीलिए यहाँ अस्तित्ववाद और अकेलापन उस रूप में नहीं दिखलाई पड़े जैसे कि यूरोप में। यहाँ समाजवादी और अस्तित्ववादी विचारों का सामंजस्य होने की स्थिति अधिक है।

यह सच है कि स्वाधीनता के बाद भारत ने उन्नति की है। सामान्य जीवन की सुविधाएँ बढ़ गई हैं। ज़मींदारी-उन्मूलन, बैंकों के राष्ट्रीयकरण, आरक्षण और अनेक ग्रामीण-योजनाओं से निम्न वर्ग के लोगों की स्थितियों में थोड़ा बहुत सुधार हुआ है। किंतु पहले से सुविधा प्राप्त वर्ग ने जितनी आर्थिक उन्नति की है, निम्न वर्ग की तुलना उससे की जाए तो स्थिति असंतोषजनक है। इस असंतोष ने राजनीति के अलावा साहित्य में भी आक्रोश की भावना उत्पन्न की। परिणामस्वरूप आक्रोशमय किंतु मूल्यहीन एवं

निषेधात्मक साहित्य देखने में आया है। संतोष की बात है कि अब नई पीढ़ी के रचनाकार आक्रोश की सीमाएँ समझ चले हैं। वे राजनीति और साहित्य का परस्पर संबंध तो मानते हैं किंतु राजनीति और साहित्य में अंतर भी करते हैं। बड़ी बात यह है कि वे परंपरा का उचित मूल्यांकन करना सीख गए हैं। उनके साहित्य में परिवर्तन की आतुर प्रतीक्षा तो है किंतु यथार्थ-स्थितियों की उपेक्षा नहीं। इससे रचनात्मकता में एक सुखद संयम दिखलाई पड़ने लगा है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में रूप के स्तर पर सर्वाधिक उल्लेखनीय भाषा-प्रयोग है। व्यंग्य के कारण तत्सम पदावली का अपूर्व अवमूल्यन हुआ। कथा-साहित्य में तो वह प्रायः व्यंग्य-विनोद के लिए या वास्तविकता और दिखावे का अंतर प्रकट करने के लिए प्रयुक्त होती है। आंचलिक साहित्य में क्षेत्रीय शब्दों का उपयोग बहुत जल्द फैशन बन गया। कहानी और कविता में अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग होने लगा– कभी-कभी भद्दे ढंग से भी कविता गद्य के बहुत निकट आ गई और कहानी में आत्मालाप और मनोजगत का चित्रण बढ़ गया। भाषा की दृष्टि से सबसे क्षतिग्रस्त हिंदी आलोचना की भाषा हुई, लेकिन यह बात असमर्थ आलोचकों की भाषा के बारे में ही कही जा सकती है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी आलोचना की भाषा में नया निखार और पैनापन भी आया है। समर्थ आलोचकों के लेखन में उसका वस्तुगत रूप निखरा है।

भारत के इतिहास में 1947 ई. का वर्ष राजनैतिक दृष्टि से भले ही महान परिवर्तन का बिंदु हो, किंतु साहित्य में तत्काल कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन घटित नहीं हुआ। कुछ दिनों तक कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, समालोचना आदि विधाओं के अंतर्गत क्रमागत प्रवृत्तियों के अनुरूप ही रचनाएँ होती रहीं। इसलिए आधुनिक काल में अन्य पूर्ववर्ती युगों की तरह 1947 ई. से किसी नितांत भिन्न साहित्यिक काल के आरंभ का आभास नहीं मिलता, फिर भी यह तथ्य है कि स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद धीरे-धीरे जो राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन हुए उनसे साहित्य भी क्रमशः प्रभावित हुआ और हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में कुछ नवीन प्रवृत्तियों का उदय हुआ।

पंचवर्षीय योजनाओं के कार्यान्वयन, सार्वजनिक मताधिकार और देश में शिक्षा के प्रसार के कारण भारत के सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन दिखलाई पड़ने लगा। नारी शिक्षा के प्रसार से महिलाएँ घर से बाहर निकल कर सार्वजनिक जीवन में भागीदारी करने लगीं। कामकाजी महिलाएँ पुरुष प्रधान समाज की पीड़ा, असमानता के विरुद्ध आवाज़ उठाने

लगीं। साहित्य में भी नारी चेतना का दौर आया। आज हिंदी उपन्यास, कविता आदि के क्षेत्र में महिला रचनाकारों का योगदान बढ़-चढ़कर हो रहा है। **कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, ममता कालिया, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल, स्नेहमयी चौधरी** आदि हमारे दौर की उल्लेखनीय महिला साहित्यकार हैं।

दलित चेतना हमारे दौर की अन्य महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। अछूतोद्धार, हरिजन सेवा का ऐतिहासिक कार्य गांधी जी ने प्रारंभ किया था और इस वर्ग के उत्थान का मार्ग प्रशस्त हुआ था। संविधान निर्माताओं ने आरक्षण की व्यवस्था की। किंतु हमारे दौर की दलित चेतना आक्रामक है। वह सवर्ण समाज से सहानुभूति की नहीं अधिकार की माँग करती है। हमारे साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इस बीच दलित साहित्यकारों की अनेक साहित्यिक रचनाएँ प्रकाश में आई हैं।

इधर सोवियत संघ के विघटन के पश्चात अमेरिका का ही अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक एवं सैन्य वर्चस्व रह गया है। खुले अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की बाधाएँ समाप्त कर दी गई हैं। इससे धनी देशों को पहले से कहीं अधिक मुनाफ़ा हो रहा है। इसे भूमंडलीकरण कहा जाता है। उत्तर आधुनिकतावाद इसी का वैचारिक प्रतिफलन है। उत्तर आधुनिकता का अर्थ **इतिहास और विचारधारा का अंत** होना है जिसका अर्थ यह हुआ कि गरीब हमेशा गरीब बने रहें और अमीर हमेशा अमीर । यह विचारधारा स्थितियों को किसी केंद्रीयता के सूत्र में नहीं बाँधतीं। केंद्र की अपेक्षा परिधि को अधिक महत्त्वपूर्ण मानती है। हिंदी साहित्य की रचना या आलोचना पर इसका कोई उल्लेखनीय प्रभाव अभी तक नहीं दिखाई पड़ा।

उपन्यास

अधिकांश स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों ने स्वाधीनता के उपरांत उत्पन्न बाह्य और आंतरिक स्थितियों पर कथानक को आधारित किया है। उपन्यासों की प्रवृत्ति तात्कालिक समस्याओं को सामाजिक संदर्भ में उभारने की अधिक रही है। स्वाधीनता के उपरांत जो परिवर्तन आया है उसे पूर्व-स्थिति के साथ रखकर टूटते हुए आदर्शवाद, बढ़ते हुए अवसरवाद और ईमानदारी को कुटिलता के चक्रव्यूह में जूझते हुए दिखाना हिंदी उपन्यासकारों की प्रवृत्ति रही। सामाजिक परिवर्तनों को ब्यौरे से प्रस्तुत भी किया गया। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों को विषयवस्तु की दृष्टि से निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—

आंचलिक उपन्यास

आंचलिक उपन्यासों में विकास का प्रवाह कम गतिशील होता है। इनका उद्देश्य अंचल विशेष के वातावरण की विशिष्टता का चित्रण होता है। व्यतीत होता हुआ पात्र पाठक में एक प्रकार की कचोट या मोहकता भर देता है। आंचलिक कृतियों की प्रकृति, भाषा, रीति-रिवाज सब मिलकर अपने आप में ही उद्देश्य बन जाते हैं। उनका आत्मीय विवरण ही ऐसा रंगीन हो जाता है कि यथार्थगत विषमता ओझल हो जाती है। ऐतिहासिक विकास अपेक्षाकृत महत्त्वहीन हो उठता है। सभी आंचलिक उपन्यासों के बारे में यह कथन समान रूप से लागू नहीं होता लेकिन सर्वाधिक प्रसिद्ध और चर्चित उपन्यास **मैला आँचल** (रेणु) आदि के बारे में यह कथन दूर तक लागू होता है। **मैला आँचल** की शक्ति उसके सविस्तार अंकन में है। **मैला आँचल** का कथा-क्षेत्र बिहार का पूर्णिया ज़िला है। एक ओर उस पर पड़ता हुआ नई स्थितियों का दबाव और दूसरी ओर परंपरा का मोह। इस तालमेल से दोनों की विशेषता निखर उठी है। शताब्दियों से एकरस जीवन पर नए युग की पहली चोट बहुत मार्मिक हो उठी है। इस आंचलिकता में दारुण यथार्थ है। कुछ आंचलिक उपन्यास अवश्य ऐसे हैं जिनमें यथार्थ की विषम परिस्थितियाँ ओझल नहीं रहतीं जैसे – नागार्जुन का **रतिनाथ की चाची**, **बलचनमा**, भैरवप्रसाद गुप्त का **गंगा मैया**, **धरती** आदि।

राही मासूम रज़ा का **आधा गाँव** अपने अकुंठ यथार्थ चित्रण में विशिष्ट है। उसमें पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक गाँव में बसे मुसलमान ग्रामीणों की कथा है जो पाकिस्तान के बारे में कुछ नहीं जानते, लेकिन भारत विभाजन की त्रासदी झेल रहे हैं। मुसलमानों की हिंदुओं से विशिष्टता या भिन्नता तो लोग देखते थे, किंतु उन्हें किसी अंचल का अंग बनाकर इसमें पहली बार प्रस्तुत किया गया है।

सामाजिक पारिवारिक उपन्यास

इस दौर में सामाजिक-पारिवारिक उपन्यासों में टूटते हुए परिवारों, स्त्री-पुरुष के नए संबंधों, राजनीतिक भ्रष्टाचार का पात्रों पर प्रभाव और यौन चेष्टाओं का चित्रण – यह सब मिलता है, यद्यपि कथानक प्रायः आर्थिक स्थिति एवं स्त्री-पुरुष संबंध के ही चारों ओर घूमता है। भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों **टेढ़े-मेढ़े रास्ते**, **भूले बिसरे चित्र** में

राजनीति मात्र को भ्रष्टाचार का स्रोत बताया गया है। मोहन राकेश का **अँधेरे बंद कमरे** वस्तुतः नागरिक जीवन में रूढ़िग्रस्त संस्कारों की यातना की कथा है। मोहन राकेश के इस उपन्यास का प्रभाव उनकी अधिकांश कहानियों के प्रभाव से भिन्न नहीं हैं । राजेंद्र यादव का **उखड़े हुए लोग** उस दंपती की कथा है जो बेईमानी और कुटिल दांव-पेच की दुनिया में रह नहीं सकता। इसमें भी ध्यान राजनीतिक और नर-नारी संबंधों के स्वार्थपूर्ण उपयोग का उद्घाटन करने पर है। उपेंद्रनाथ अश्क मध्यवर्ग के जीवन की विविधता को उसकी संपूर्णता में प्रकाशित कर देते हैं। वे कथा को विस्तार से कहते हैं। निस्संदेह अश्क की औपन्यासिक क्षमता उनके उपन्यास **गिरती दीवारें** में पूरी तरह दिखलाई पड़ती है। **बड़ी-बड़ी आँखें** उनका एक अन्य उपन्यास है। कामकाजी नारी की आर्थिक स्थिति मज़बूत होने के बावजूद मध्यवर्गीय संस्कारों का आघात उसे कैसे सहना पड़ता है, इसे चित्रित करने की दृष्टि से रमाकांत का उपन्यास **तीसरा देश** उल्लेखनीय है। **बेघर** में ममता कालिया ने नैतिकता से चिपटे नवयुवक की यातना का चित्रण किया है।

फ्रायड आदि मनोविश्लेषण शास्त्रियों का प्रभाव हिंदी कथा साहित्य पर स्वतंत्रता के पूर्व ही पड़ चुका था। इलाचंद्र जोशी, जैनेंद्र और अज्ञेय ने मनोविश्लेषण शास्त्र के सिद्धांतों का उपयोग किया। इसी परंपरा में दर्शन शास्त्र के विद्वान डॉ. देवराज ने **अजय की डायरी** लिखा। अज्ञेय के उपन्यास **शेखर एक जीवनी** और **नदी के द्वीप** पर राजनीति, अस्तित्ववाद और मनोविश्लेषण तीनों का प्रभाव है। कुल मिलाकर **नदी के द्वीप** यौन-भावना प्रधान उपन्यास है, जो अज्ञेय की चिंतन-पद्धति को ध्वनित करता है। **अजय की डायरी** डायरी शैली में लिखा गया है। इसमें दांपत्य-जीवन का विचलन, लड़कियों की शादी की समस्या, शिक्षा जगत में फैला भ्रष्टाचार – इन सबको एक-दूसरे से संबद्ध कर दिया गया है।

अस्तित्ववादी उपन्यास

अज्ञेय का एक अन्य उपन्यास **अपने-अपने अजनबी** है, जहाँ तीन-चार लोग भयंकर बर्फ़ीले मौसम में एक साथ रहने को बाध्य हो गए हैं। मानव की अंतिम नियति मृत्यु उन पर छाई रहती है। मृत्यु के संदर्भ में उनकी अतीत और वर्तमान चेष्टाएँ महत्त्वहीन और निरर्थक लगती हैं। नियति और व्यर्थता-बोध उपन्यास के केंद्र में है।

ऐतिहासिक उपन्यास

वृंदावनलाल वर्मा ने **मृगनयनी** (1950) लिखा। वर्मा जी की कथावस्तु में बहुत विचित्रता एवं आकर्षण है। बुंदेलखंड का जीवन सांस्कृतिक दृष्टि से संपन्न है। यह उनके उपन्यासों में पर्याप्त दिखाई पड़ता है। राहुल जी ने **सिंह सेनापति** (1957) लिखा। सिंह सेनापति का नाम **अंगुत्तर निकाय** में आया है। वह जैन धर्म छोड़कर बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गया था। उस युग के अनेक सूत्रों को अपने युग से मिलाना इस उपन्यास का उद्देश्य मालूम पड़ता है। चतुरसेन शास्त्री ने **वैशाली की नगर वधू** (1949) नामक एक बृहत रोमानी उपन्यास लिखा जिसमें कथा को ऐतिहासिक वातावरण में देखा गया है। लेखक ने ह्रासोन्मुख बुद्धकालीन भारत के विलासी और मादक रूप को धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक घटनाओं के बीच प्रस्तुत किया है।

इस बीच हजारी प्रसाद द्विवेदी ने **चारुचंद्र लेख** (1963), **पुनर्नवा** (1973) और **अनामदास का पोथा** (1977) लिखा। इन उपन्यासों में द्विवेदी जी अधिकाधिक वस्तुनिष्ठ होते गए हैं। **बाणभट्ट की आत्मकथा** में वातावरण और मनःस्थितियों की तीव्रता और संयम का चित्रण प्रधान था। **चारुचंद्र लेख** की मूल कथा प्रबंध चिंतामणि से ली गई है। इसमें आदि कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि स्थितियाँ चित्रित हैं। उस काल में अनेक धार्मिक साधनाएँ किस प्रकार एक दूसरे से टक्करा रही थीं, यह देखने में आ जाता है। इस उपन्यास का मूल उद्देश्य धार्मिक कर्मकांड और रहस्यमयता की निस्सारता दिखाकर मानवीयता को प्रतिष्ठित करना है। **पुनर्नवा** में लोरिक-चंदा की लोक-कथा को **मृच्छकटिकम्** की कथा से जोड़कर कथा में कालिदास को भी ले आया गया है। इसमें सामाजिक विधि-निषेधों की पुनर्परीक्षा की गई है। **अनामदास का पोथा** छांदोग्य उपनिषद् की एक कथा पर आधारित है। इसमें परम सत्ताविषयक ज्ञान-साधना और रागात्मक वृत्ति का एक प्रकार से सामंजस्य है। अमृतलाल नागर का उत्कृष्ट उपन्यास **मानस का हंस** 1947 ई. में प्रकाशित हुआ। यह हिंदी के महान कवि तुलसी के मानसिक विकास और उस युग के विविधतापूर्ण जीवन को साक्षात कर देता है। उन्हीं का उपन्यास **खंजन नयन** सूरदास के जीवन पर आधारित है।

राजनीतिक उपन्यास

इस दौर में बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना के व्यापक प्रभाव को ध्यान में रखकर ऐसे उपन्यास लिखे गए जिनसे ऐतिहासिक प्रवाह की अनुभूति पाठक को हो जाती है। इनमें सामान्य जन-समूह पर पड़ते हुए राजनीतिक दबाव को बहुत सामान्य घटनाओं और मनःस्थितियों के चित्रण के माध्यम से संकेतित किया गया है। यशपाल का **झूठा सच,** अमृतलाल नागर का **बूँद और समुद्र,** भीष्म साहनी का **तमस** ऐसे ही उपन्यास हैं। इनमें लेखक की परिपक्व राजनीतिक समझ राजनीति को बहुत व्यापक संदर्भ में प्रस्तुत करती है। **झूठा सच** (1958) विभाजन की महाकाव्यात्मक गाथा है। भारत विभाजन की त्रासदी कितनी भयंकर और प्रभाव में दूरगामिनी है, इस पर यशपाल जैसे पुराने क्रांतिकारी और प्रतिबद्ध लेखक का ध्यान जाना उचित ही था। एक बहुप्रचारित झूठ यानी सांप्रदायिकता ने कितने बड़े सच अर्थात भारतीय जनता की वास्तविक आकांक्षा को पीछे धकेल दिया। इस घटना ने कितने व्यक्तियों को कितने रूपों में पीड़ित किया, इसकी वेदना यह उपन्यास पाठक को संप्रेषित करता है। पंजाब की विभाजन-पूर्व स्थितियों का स्मृत रूप कृष्णा सोबती के **ज़िंदगीनामा** उपन्यास में दिखाई पड़ा। मन्नू भंडारी का **महाभोज** भी एक राजनीतिक उपन्यास है, जिसमें आधुनिक राजनीतिक और सामाजिक समस्याएँ व्यक्त हुई हैं।

व्यंग्य प्रधान एवं अन्य प्रकार के उपन्यास : भैरवप्रसाद गुप्त ने **अंतिम अध्याय** नामक उत्कृष्ट व्यंग्यपूर्ण उपन्यास लिखा। इस दौर में अन्य प्रसिद्ध व्यंग्यप्रधान उपन्यास श्रीलाल शुक्ल का **रागदरबारी** और मनोहर श्याम जोशी का **कुरु-कुरु स्वाहा** है। जोशी का **कसप** क्षेत्रीय प्रेम कथा है। काशीनाथ सिंह का **अपना मोर्चा** शिक्षा-जगत की हलचलों का चित्रण मौलिक ढंग से करता है। इस क्षेत्र को उपन्यास के विषय के रूप में चुनना महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।

आज बहुत बड़ी संख्या में उपन्यास लिखे जा रहे हैं जिनकी विषयवस्तु में विविधता है और शैली में नवीनता। आज का उपन्यासकार कलात्मक रुझान के प्रति अधिक सजग है। उपन्यासों के विन्यास और संरचना में गहरा बदलाव आया है। समकालीन हिंदी उपन्यास को किसी एक विशेष श्रेणी में बाँटकर देखना मुश्किल है। एक तरफ मनोहर श्याम जोशी, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, कृष्णा सोबती, भीष्म साहनी जैसे वरिष्ठ

उपन्यासकारों की रचनाएँ सामने आ रही हैं तो दूसरी ओर विनोद कुमार शुक्ल का **नौकर की कमीज़**, असगर वजाहत का **सात आसमान**, कामतानाथ का **काल कथा**, भगवानदास मोरवाल का **काला पहाड़** जैसे उपन्यास भी हिंदी साहित्य में चर्चित हो रहे हैं। इस बीच महिला कथाकारों के अनेक सार्थक उपन्यास सामने आए हैं, जिससे हिंदी उपन्यास साहित्य समृद्ध हुआ है। मैत्रेयी पुष्पा का **चाक**, चित्रा मुद्गल का **आँवा**, मृदुला गर्ग का **कठगुलाब** और अलका सरावगी का **कलिकथा वाया बाइपास** समकालीन हिंदी उपन्यास साहित्य की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। अमरकांत का सन 1942 की जनक्रांति पर आधारित उपन्यास **इन्हीं हथियारों से** उल्लेखनीय कृति है।

कहानी

इस काल-खंड का सामान्य परिचय देते हुए कहा जा चुका है कि स्वाधीन भारत के सुदूर क्षेत्रों में निर्माण कार्य, आम चुनावों, राजनीतिक अधिकारों के प्रति चेतना जगाने एवं शिक्षा का प्रसार होने से इन क्षेत्रों का संबंध नगरों से सघन तौर पर जुड़ा जिससे आंचलिक साहित्य सामने आया। साथ ही साथ स्त्री-शिक्षा का व्यापक प्रचार होने और उनके द्वारा नौकरी करने से परिवार में उनकी स्थिति बदली। नगरों, महानगरों में औद्योगिक विकास होने से सामूहिक जीवन का महत्त्व सामने आया। व्यक्ति का मनोजगत कहीं अधिक जटिल हो गया। हिंदी कहानी पर इस सबका दबाव पड़ा। इससे वस्तु-संवेदना के साथ कहानी का रूप-विधान भी बदला। सन 1955 के आस-पास **नई कहानी** आंदोलन चल निकला। इस कहानी आंदोलन को प्रवर्तित और प्रतिष्ठित करने में **नई कहानियाँ** के संपादक भैरव प्रसाद गुप्त की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। **नई कहानियाँ** के माध्यम से उन्होंने हिंदी को अनेक प्रतिभाशाली कहानीकार दिए।

नई कहानी आंदोलन ने स्वातंत्र्योत्तर स्थितियों के दबाव से पैदा होने वाली मानसिकता की जटिलता को अपनी संवेदना में समेट लिया। इसीलिए **नई कहानी** की वस्तु-संवेदना के अनेक पक्ष हैं। उन सभी को सामूहिक तौर पर **नई कहानी** की वस्तुगत विशेषताओं में गिना जाता है। आंचलिकता, नए पारिवारिक संबंध, भ्रष्टाचार, व्यंग्य, विडंबना आदि **नई कहानी** की संवेदना का निर्माण करते हैं।

शिव प्रसाद सिंह की **दादी माँ**, मार्कंडेय की **गुलरा के बाबा** चरित्र प्रधान ग्रामीण कहानियाँ हैं। आंचलिकता की चर्चा वस्तुतः रेणु के उपन्यास **मैला आंचल** से शुरू हुई। रेणु की कहानियों में पात्रों की चेष्टाएँ, भाषा आदि क्षेत्रीय वातावरण में घुली-मिली होती हैं। इंद्रियबोध, लोककथा, लोक धुनें रेणु की कहानियों के विशिष्ट उपादान हैं। अपनी सर्वाधिक प्रसिद्ध कहानी **तीसरी कसम** में 40 वर्षीय ग्रामीण गाड़ीवान हीरामन और नर्तकी हीराबाई के परस्पर आकर्षण की कथा के आधार पर रेणु ने कहानीकार के रूप में मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया।

भारतीय समाज विशेषतः सवर्ण समाज में नारी की स्थिति दयनीय रही है। स्वाधीन भारत में शिक्षित और नौकरी प्राप्त नारियाँ भी कहानियों का पात्र बनने लगीं। मोहन राकेश की कहानी **एक और ज़िंदगी** में नायक उद्विग्न है, उसे पाठक की सहानुभूति की तलाश है। कारण यह है कि पत्नी उसकी उपेक्षा करती है। पत्नी नौकरी करती है और आर्थिक तौर पर स्वतंत्र है। नर-नारी के प्रेम की अवधारणा में जो उदारता कहानियों में दिखलाई पड़ती है उसका कारण कहीं न कहीं नारी का आर्थिक रूप से स्वतंत्र होना और शिक्षित होना भी है। इस दृष्टि से कमलेश्वर की **राजा निरबंसिया** और रवींद्र कालिया की कहानी **नौ साल छोटी पत्नी** उल्लेखनीय हैं। स्त्री-पुरुष के संबंध को लेकर एक साहसपूर्ण लंबी कहानी कृष्णा सोबती की **मित्रो मरजानी** है। बदलते हुए पारिवारिक संबंधों के साथ मध्यवर्गीय व्यक्ति अनजाने ही क्रमशः अपनी मानवीय संवेदना खो बैठता है, इसे राजेंद्र यादव ने **टूटना** जैसी कहानी में व्यक्त किया है। आधुनिक जीवन में हमारे परंपरागत मूल्य कितनी आसानी से टूट जाते हैं, इसे शानी ने **इमारत ढहाने वाले** कहानी में दिखाया है। शानी मानव संबंधों को उभारने में कुशल हैं। इस प्रसंग में नारी जीवन की एकरसता को मार्मिक तौर पर उभारने वाली कहानी **रोज़** का उल्लेख अनिवार्य है। इसके लेखक अज्ञेय हैं।

इस बदलते हुए पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में बुज़ुर्गों की स्थिति को हिंदी कहानी में **चीफ़ की दावत** और **वापसी** के माध्यम से भीष्म साहनी तथा उषा प्रियंवदा ने दर्शाया। **चीफ़ की दावत** में उपेक्षिता और परिवार में कूड़ा-करकट की तरह छिपाई जाने वाली वृद्धा माँ का महत्त्व उजागर करके प्रतीकात्मक ढंग से परंपरा का महत्त्व दिखाया गया है। **वापसी** निहायत निर्मम ढंग से यह दिखाती है कि सेवा निवृत्त होकर मनुष्य अपने ही परिवार में किस तरह फालतू हो जाता है। **वापसी** कहानी में टूटते हुए संयुक्त परिवार की विवश स्वीकृति है।

स्वाधीन भारत में गुज़रती हुई पीढ़ी का वास्तविक यथार्थ तीव्रतम रूप से अमरकांत की कहानी **डिप्टी कलक्टरी** में व्यंजित हुआ। इस कहानी में डिप्टी कलक्टरी की परीक्षा देता है बेटा और आतुरता की धार पर वेदना सहता है पिता। पिता की पुत्र से आशाएँ-आकांक्षाएँ मानो अतीत की वर्तमान के प्रति शुभकामनाएँ हैं। सकलदीप बाबू की व्यग्रता और अधीरता की चेष्टा में मध्य वर्गीय समाज की रूढ़ियाँ, अंध विश्वास, एकरसता और उन सबसे उबरने की मानसिकता है। अमरकांत की कहानियाँ हमारे सामाजिक जीवन की अमानवीय स्थितियों को एक यातनागार की तरह पेश करती हैं और इससे उबरने की असफल चेष्टाओं का चित्रण करके यातनाग्रस्त समाज की दयनीयता को और मार्मिक बना देती हैं। अमरकांत की कहानियों में स्वातंत्र्योत्तर भारत का दोमुहाँपन व्यक्त हुआ है। **ज़िंदगी और जोंक, सप्ताहांत, मूस, मकान, हत्यारे** इसी तरह की कहानियाँ हैं।

आज की विषम स्थिति को झेलकर भी मनुष्य यथासंभव अपनी मूल्यवत्ता सँजोए हुए है। यह शेखर जोशी की कहानियों की मुख्य संवेदना है। मूल्यवत्ता को प्रकट करने वाली कहानियाँ प्रायः भाववादी पद्धति पर रची जाती हैं। शेखर जोशी ऐसी कहानियों को भी जटिल ताने-बाने से तैयार करते हैं। इस रचनात्मक क्षमता के वे अकेले कहानीकार हैं जो दबे, सधे और निश्चित ढंग से पात्रों की मानवीयता उभार सकते हैं। **कोसी का घटवार** का प्रेम, **दाज्यू** में पहाड़ी लड़के का स्वाभिमान, **बदबू** में जड़ व्यवस्था का अंग बनने की अस्वीकृति, **हलवाहा** में निश्चयात्मक बोध आदि उनकी इसी रचनात्मक शक्ति के द्योतक हैं।

निर्मल वर्मा मन की गहरी परतों को उघाड़ने वाले कहानीकार हैं। उनकी कहानियों में परिस्थितियों का प्रभाव मन पर इस तरह पड़ता है कि पाठक मनोजगत में ही रम जाता है। स्थितियों का ठोसपन या उनका बाहरीपन निर्मल वर्मा की कहानियों में कम महत्त्वपूर्ण है। संगीतात्मकता और दृश्यों का संवेदनशील वर्णन उनकी शैली की विशेषता है। निर्मल वर्मा संवेदना की सूक्ष्मता और पारदर्शिता के लिए महत्त्वपूर्ण हैं, व्यापकता के लिए नहीं। **परिंदे** उनका चर्चित कहानी संग्रह हैं।

नई कहानी आंदोलन से अलग रहकर जिन कहानीकारों ने अपनी पहचान बनाई या बनाए रखी, उनमे जैनेंद्र, यशपाल, विष्णु प्रभाकर, अज्ञेय, भगवतीचरण वर्मा, द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण', चंद्रगुप्त विद्यालंकार उल्लेखनीय हैं। अज्ञेय ने भारत-विभाजन के कारण उत्पन्न शरणार्थी की समस्याओं और उनकी स्थिति पर अनेक कहानियाँ लिखीं। जैनेंद्र

पहले की तरह मन की गहरी परतों को खोलने वाली कहानियाँ लिखते रहे। **नई कहानी** आंदोलन से अलग रहने वाले लोकप्रिय और यशस्वी कहानीकार विष्णु प्रभाकर ने **धरती अब भी घूम रही है** जैसी भावना-प्रवण अनेक कहानियाँ लिखीं। विष्णु प्रभाकर सामाजिक जीवन की समस्याओं को लेकर हर प्रकार की मानवीय पीड़ा से व्यथित होने वाले वादमुक्त कहानीकार हैं। भावना-प्रवण कहानियाँ लिखने के लिए निर्गुण और चंद्रगुप्त विद्यालंकार भी विख्यात हैं। हृदयेश की कहानियाँ यथार्थ की विषमता का व्यंग्यपूर्ण उद्घाटन करती हैं। उनकी कहानी **मनु** में ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में एक ब्राह्मण कर्मकांडी की यातना का निर्भीक चित्रण किया गया है। शैलेश मटियानी ने अपनी कहानियों में निम्नवर्गीय पात्रों के दारुण जीवन का प्रामाणिक चित्रण किया है।

सातवें दशक के मध्य से भारतीय जन मानस में प्रतीक्षा का भाव समाप्त हो चला। इसके स्थान पर मोहभंग और सामाजिक परिवर्तन के लिए आतुरता और अधीरता का भाव पैदा हुआ। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह नेहरू युग की समाप्ति के बाद राजनीतिक, आर्थिक स्थिति में परिवर्तन की व्यापक माँग का ही प्रतिफलन था। कहानी की रचना में रत होने वाले नवयुवक कहानीकार सत्ता के प्रति आक्रोशमय रवैया रखते थे। उनका यह रवैया उनकी कहानियों में प्रकट हुआ। इन कहानीकारों का आक्रोश और समझ नई कहानी की भाषा को अलग रूप एवं खुलापन देता है और व्यंग्य पूर्ण तेवर भी। भ्रष्टाचार कितना सहज और स्वीकार्य बन गया है, इसकी अभिव्यक्ति इन कहानीकारों की विशेष प्रवृत्ति है। इसी कारण इनकी रचनाओं में घृणा और क्षोभ है। इस प्रवृत्ति के प्रतिनिधि कहानीकार हैं – ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह, पंकज बिष्ट, असगर वजाहत, मिथिलेश्वर और संजीव आदि। इन कहानीकारों में मिलने वाला व्यंग्य वास्तविक और पैना है।

इस बीच कुछ ऐसी कहानियाँ भी आई हैं, जो विकसित स्थिति की संभावनाओं पर भी ध्यान देती हैं। मधुकर सिंह की एक कहानी **लहू पुकारे आदमी** में दिखाया गया है कि गरीब सवर्ण और गरीब अवर्ण वस्तुतः समान हैं और इसी प्रकार अमीर सवर्ण और अमीर अवर्ण भी। यह वर्ग चेतना केवल किताबी बोध नहीं है। चुनावों और शिक्षा का परिणाम है। अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानी **सुलह** में एक असहाय ग्रामीण पात्र पुलिस और उच्च वर्ग की मिली भगत की पहचान कर अपने ढंग से यानी ज़ालिम को पीटकर सुलह करता है। स्वयं प्रकाश, संजीव, उदय प्रकाश, अखिलेश, मदनमोहन, ओमप्रकाश

वाल्मीकि, विपिन बिहारी, चित्रा मुद्गल, ममता कालिया, विद्यासागर नौटियाल, शिवमूर्ति, दूधनाथ सिंह, हरिवंश राय आदि आज के प्रमुख कहानीकार हैं।

नाटक एवं एकांकी

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य में नाटकों की आवश्यकता का अनुभव किया गया, यह भी अनुभव किया गया कि नाटकों की रचना के लिए यह समय उपयुक्त है, किंतु उस मात्रा और गुण में नाटकों की रचना नहीं हुई। इसका सबसे बड़ा कारण हिंदी के अपने रंगमंच का अभाव है। हिंदी क्षेत्र में लोक नाट्य-रूपों की कमी नहीं। स्वांग, नौटंकी, बिदेसिया, सफेड़ा (या सपेरा) यहाँ के बहुप्रयुक्त लोक नाट्य-रूप हैं, किंतु परिनिष्ठित साहित्यिक रंगमंच का उससे कोई व्यावहारिक संबंध नहीं रहा। हिंदी के साहित्यिक नाटक प्रधानतः पाठ्य रचनाएँ हैं। अब तक केवल भारतेंदु के नाटकों के विषय में ही यह बात कही जा सकती है कि उनका जीवित संबंध हिंदी की जातीय नाट्य परंपरा से रहा है।

पहले से लिखने वाले अनेक नाटककार स्वाधीन भारत में भी नाटकों की रचना करते रहे। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने गांधी जी पर **मृत्युंजय** (1958) रचा। उदयशंकर भट्ट ने **शकविजय** (1949), **नया समाज** (1955) आदि लिखा।

स्वाधीन भारत के नाटक साहित्य में पहला उल्लेखनीय नाम जगदीशचंद्र माथुर का है जिन्होंने **कोणार्क** (1951), **शारदीया** (1959), **पहला राजा** (1969) और **दशरथनंदन** (1974 के आस-पास) लिखा। इन नाटकों का महत्त्व विषयवस्तु की दृष्टि से अधिक है, अभिनेयता या रंगमंच की दृष्टि से अपेक्षाकृत कम। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध **कोणार्क** है जिसमें कलाकार के संघर्ष की समस्या को प्रस्तुत किया गया है।

गीति-नाटकों की परंपरा में धर्मवीर भारती का **अंधा युग** (1955) निस्संदेह स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य की महत्त्वपूर्ण रचना है। इसकी अभिनेयता भी पुष्ट है। महाभारत के अंतिम अंश को द्वितीय विश्वयुद्ध के साथ जोड़ा गया है। लेकिन इसमें युद्ध की समस्या कम है, अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन का प्रतिपादन अधिक। इसके रूपात्मक ढाँचे पर ग्रीक नाटकों का प्रभाव स्पष्ट है। एक दूसरा उल्लेखनीय गीति-नाटक दुष्यंतकुमार का **एक कंठ विषपायी** (1963) है।

मोहन राकेश अब तक स्वाधीन भारत के सबसे सफल हिंदी नाटककार हैं। उन्होंने ऐतिहासिक कथानक पर आधारित अपनी नाट्यकृतियों को समकालीन बोध से कुशलतापूर्वक

संयुक्त किया। **आषाढ़ का एक दिन** (1958) कालिदास के जीवन पर आधारित है। इसकी विषयवस्तु की मूल सामग्री कालिदास की रचनाओं से जुटाई गई है। रचनाकार और राज सत्ता के जटिल संबंध को दर्शाया गया है। रचनाकार की निजी और रचनात्मक नैतिकता भी इससे अप्रभावित नहीं रहती। प्रेम संबंध की समस्या को संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत किया गया है। **आधे-अधूरे** (1969) स्वातंत्र्योत्तर भारत का पहला हिंदी नाटक है जिसमें टूटते हुए पारिवारिक मूल्यों को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। सभी पात्र अपनी इच्छाओं की पूर्ति और आचरण में अपूर्ण हैं। अधूरेपन का यह अहसास हमारे युग की नियति है। मोहन राकेश का एक अन्य प्रसिद्ध नाटक **लहरों के राजहंस** (1963) है। यह अश्वघोष की कृति **सौंदरनंद** पर आधारित है।

लक्ष्मीनारायण लाल ने अभावग्रस्त ग्राम्य जीवन के सामाजिक और पारिवारिक संघर्ष को **अंधा कुआँ** (1955) में प्रस्तुत किया है। **मादा कैक्टस** (1959), **रक्तकमल** (1962) आदि उनके प्रतीकात्मक नाटक हैं। लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में अभिनेयता होती है और वे रंगमंच की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हैं। **तोता मैना** (सगुन पंछी) उनकी एक प्रयोगात्मक रचना है जिसमें लोक शैली को अपनाया गया है।

अन्य नाटककारों में सर्वाधिक उल्लेखनीय सुरेंद्र वर्मा हैं, जिन्होंने **द्रौपदी, सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक** और **आठवाँ सर्ग** की रचना की है। इनके नाटकों का विषय सामाजिक, पारिवारिक भी होता है और ऐतिहासिक भी।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, लक्ष्मीकांत वर्मा, मुद्राराक्षस आदि ने भी नाटकों की रचना की ओर ध्यान दिया। इधर भीष्म साहनी ने **हानूश, कबिरा खड़ा बाज़ार में, माधवी** और **मुआवज़े** की रचना की है। दूधनाथ सिंह का **यमगाथा** नाटक राजनीतिक थियेटर की नई संभावना जगाता है तो हमीदुल्ला का **उलझी आकृतियाँ** व्यवस्था विरोधी नाटक है। मृदुला गर्ग ने अपने नाटक **एक और अजनबी** में यौन विकृतियों का चित्रण किया है।

स्वतंत्रता के बाद सफल उल्लेखनीय एकांकी बहुत कम रचे गए हैं। बात यह है कि एकांकी के नाम पर अधिकांशतः रेडियो-एकांकी ही लिखे जाते हैं, जो बहुत कुछ सामयिक विषयों पर और रेडियो की माँग पर तैयार किए जाते हैं। किंतु उपेंद्रनाथ अश्क, भुवनेश्वर, जगदीश चंद्र माथुर आदि प्रसिद्ध एकांकीकार केवल रेडियो-एकांकी नहीं लिखते थे। रेडियो एकांकियों का साहित्यिक स्तर प्रायः बहुत ऊँचा नहीं होता। इसलिए इस क्षेत्र में बहुत कम नाम उभर कर आए। विष्णु प्रभाकर, जगदीश चंद्र माथुर, लक्ष्मीनारायण लाल

आदि नाटककारों ने एकांकी भी लिखे हैं। एकांकी विधा को अपनाने वाले रचनाकारों में विनोद रस्तोगी और चिरंजीत भी उल्लेखनीय हैं।

वस्तुतः नाटक ऐसी विधा है जो वस्तुनिष्ठता की बहुत माँग करती है। नाटक केवल लिखा नहीं जाता, वह अभिनीत होकर दर्शकों से तादात्म्य स्थापित करने के बाद पूरा होता है। इस दृष्टि से हिंदी नाटक अपने युग की आवश्यकताओं की पूर्ति करते नहीं प्रतीत होते। इस युग में कथनी-करनी के अंतर का जो बोध है उसे प्रकट करने के लिए नाटक सर्वोत्तम विधा है। इसीलिए अन्य साहित्य विधाओं में नाटकीयता का महत्त्व बढ़ गया है। हिंदी की जातीय नाट्य परंपरा का थोड़ा बहुत उत्थान जन नाट्य मंच (इप्टा) में दिखलाई पड़ा था। हबीब तनवीर के **आगरा बाज़ार** और **चरनदास चोर** को हिंदी की जातीय नाट्य परंपरा की उल्लेखनीय कृतियाँ समझना उचित होगा।

निबंध

निबंध ऐसी गद्य-विधा है जो विचारपरक और अनुभूतिपरक दोनों हो सकती है। विचारपरकता उसे शास्त्र की ओर ले जाती है और अनुभूतिपरकता सर्जनात्मक साहित्य की ओर। रामचंद्र शुक्ल के निबंध विचारपरक हैं। वे अपने निबंधों में शास्त्र (काव्यशास्त्र) का निर्माण करते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अधिकांश निबंध सर्जनात्मक साहित्य की कोटि में आते हैं। द्विवेदी जी के निबंधों की चर्चा पहले की जा चुकी है। उनके अनेक श्रेष्ठ निबंध स्वातंत्र्योत्तर काल में भी निकले – **नाखून क्यों बढ़ते हैं, आम फिर बौरा गए, ठाकुर की बटोर** आदि। वे अंतिम समय तक निबंध लिखते रहे। **देवदारु** और **कुटज** जैसे निबंध 1960 ई. के बाद लिखे गए। द्विवेदी जी मूलतः सर्जनात्मक या ललित निबंधकार हैं। उनका मन सबसे अधिक इसी विधा में रमा है। अतः उनके निबंधों पर यहाँ कुछ चर्चा कर लेना अप्रासंगिक न होगा।

द्विवेदी जी अपने निबंधों में भारत के सांस्कृतिक इतिहास का पुनर्निर्माण करते हैं। अपने अगाध पांडित्य को बोझ न बनाकर सामान्य मनुष्य की तरह सोच-समझ पाना एवं अनुभव कर पाना उनकी सबसे बड़ी शक्ति है। वे हर जानकारी, हर अनुभव को सामान्य मनुष्य के व्यापक हित की कसौटी पर कसते हैं। काल-बोध उनके चिंतन की दूसरी विशेषता है, जिसे वे कई बार 'मनुष्य की जय-यात्रा' जैसे प्रयोग से प्रकट करते हैं।

द्विवेदी जी वनस्पति, साहित्य, भाषा, इतिहास सबका प्रयोग करते हैं, जिससे उन सबको हम नए ढंग से पहचानने लगते हैं। द्विवेदी जी प्राचीन साहित्य और संस्कृति के पंडित हैं, फिर भी उनकी शैली बहुत सहज, अनौपचारिक और आत्मीय है। वे तद्भव ही नहीं ठेठ क्षेत्रीय शब्दों का प्रयोग भी धड़ल्ले से करते हैं।

अज्ञेय के अनेक निबंध संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'कुट्टिचातन' के उपनाम से उनके व्यक्तिपरक निबंध छपे हैं। अज्ञेय ने साहित्य, कला, संस्कृति जैसे विषयों पर गंभीर निबंध भी लिखे। निबंधों में उनका चिंतक रूप उभरा है। **आत्मनेपद** और **भवंती,** उनके प्रतिनिधि निबंध-संग्रह हैं। जैनेंद्र ने अज्ञेय से पहले इस प्रकार के गंभीर चिंतनपरक निबंध लिखे थे। जैनेंद्र जी बाद में भी निबंध लिखते रहे।

रामवृक्ष बेनीपुरी और भदंत आनंद कौसल्यायन ने निबंध-साहित्य की श्रीवृद्धि की। बेनीपुरी जी सामाजिक उत्पीड़न से विक्षुब्ध होने वाले लेखक हैं, किंतु उनके निबंध भावप्रवण होते हैं, जबकि भदंत आनंद कौसल्यायन उन्हीं समस्याओं को तर्कपूर्ण और सीधे-सादे किंतु प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हैं। गुलाबराय, दिनकर, नगेंद्र, विनयमोहन शर्मा, विजयेंद्र स्नातक ने अधिकांशतः साहित्यिक निबंध लिखे। इंद्रनाथ मदान ने व्यक्तिपरक निबंध लिखे।

इस युग के निबंधकारों में हरिशंकर परसाई (1921-1995) ने व्यंग्यपरक निबंधों को अपूर्व प्रतिष्ठा दी। उनके निबंधों के विषय प्रायः राजनैतिक और सामाजिक होते हैं। व्यंग्य निबंधों में इतनी पैनी राजनीतिक सूझबूझ का परिचय हिंदी में दुर्लभ था। उनके व्यंग्य-निबंधों में व्यंग्य का साहित्यिक प्रतिमान स्थापित हुआ। व्यंग्य भी गंभीर साहित्यिक विधा में गणनीय हुआ। वस्तुतः स्वातंत्र्योत्तर भारत की मानसिकता यदि कहीं निबंधों में व्यक्त हुई है तो परसाई के निबंधों में। शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवींद्रनाथ त्यागी ने भी श्रेष्ठ व्यंग्य-निबंध लिखे हैं।

आचार्य नरेंद्र देव, डॉ. राममनोहर लोहिया, डॉ. संपूर्णानंद, राहुल सांकृत्यायन के अधिकांश निबंध सांस्कृतिक विषयों पर हैं जबकि डॉ. रामविलास शर्मा के निबंध राजनीतिक या संस्मरणात्मक हैं। क्रांतिकारियों के जीवन से संबंधित संस्मरण लिखने के लिए बनारसीदास चतुर्वेदी दीर्घकाल तक हिंदी पाठकों द्वारा कृतज्ञतापूर्वक स्मरण किए जाएँगे। पत्रकार की भाषा कितनी सटीक, चुस्त हो सकती है, यह चतुर्वेदी जी के निबंधों की भाषा शैली से जाना जा सकता है। नामवर सिंह के व्यंग्यपरक निबंधों का

एक संकलन **बकलमखुद** के नाम से प्रकाशित हुआ। धर्मवीर भारती का फुटकल निबंध-संग्रह **ठेले पर हिमालय** शीर्षक से छपा।

विद्यानिवास मिश्र प्राचीन भारतीय साहित्य के अधिकारी विद्वान हैं। उनके ललित निबंधों में विद्वत्ता एवं सर्जना का सुखद योग हुआ है। **प्रभुजी तुम चंदन हम पानी, मेरे राम का मुकुट भीग रहा है** आदि उनके प्रमुख निबंध संग्रह हैं। विवेकी राय और कुबेरनाथ राय के निबंध सांस्कृतिक विषयों पर होते हैं। उनके निबंधों में लोकजीवन की ताज़गी मिलती है और उसका आकर्षण भी।

समालोचना

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी आलोचना के क्षेत्र में अधिकांश पूर्वोल्लिखित शुक्लोत्तर समालोचक सक्रिय रहे। नंददुलारे वाजपेयी ने जो लिखा वह आधुनिक साहित्य के विषय में है। डॉ. नगेंद्र ने रस सिद्धांत पर काम किया। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कालिदास-काव्य की लालित्य-मीमांसा करते हुए काव्य रचना के विषय में कुछ मौलिक प्रश्नों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया। इन आलोचकों का प्रभाव तो स्वातंत्र्योत्तर हिंदी आलोचना पर है, किंतु अधिकांश महत्त्वपूर्ण समालोचना ग्रंथ 1947 ई. के पूर्व निकल चुके थे। ये व्यावहारिक आलोचना पहले कर चुके थे। इस काल खंड में इन्होंने सिद्धांत-निर्माण का काम ज़्यादा किया। नंददुलारे वाजपेयी का **हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी**, हजारी प्रसाद द्विवेदी का **कबीर** और डॉ. नगेंद्र के **सुमित्रानंदन पंत** और **साकेत-एक अध्ययन** 1947 ई. के पूर्व ही प्रकाशित हो चुके थे।

इन आलोचकों की प्रारंभिक समालोचना दृष्टि शुक्ल जी से टकराकर विकसित हुई थी। वाजपेयी जी और डॉ. नगेंद्र ने उनके छायावाद संबंधी विचारों की आलोचना की थी। द्विवेदी जी ने कबीर का मूल्यांकन शुक्ल जी से भिन्न प्रकार का किया और भक्ति आंदोलन के प्रादुर्भाव के कारणों के विषय में भी असहमति प्रकट की। वाजपेयी जी ने 1947 ई. के बाद अधिकांश फुटकल साहित्यिक निबंध लिखे। डॉ. नगेंद्र ने आधुनिक साहित्य पर समीक्षात्मक निबंध लिखे। किसी एक कवि या ग्रंथ पर कोई पूरी पुस्तक नहीं आई। देव पर उनका शोधग्रंथ अवश्य प्रकाशित हुआ। रस-सिद्धांत की उन्होंने जीवनवादी व्याख्या की, पाश्चात्य एवं भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांतों का तुलनात्मक अध्ययन किया, अनेक ग्रंथों का संकलन किया। उनका ध्यान नए-नए आलोचना सिद्धांतों पर

लगातार जाता रहा है जैसे कुछ समय पूर्व ही नए समीक्षा साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन और शैली-विज्ञान पर भी उनकी किताबें आई हैं।

द्विवेदी जी ठेठ आलोचक नहीं हैं। उनकी समीक्षा आलोचना का अनुशासन स्वीकार नहीं करती। आलोचना लिखते समय भी उनकी शैली ललित निबंधकार की ही होती है। वे रचनापूर्व बाह्यांतर कारणों एवं स्थितियों पर विचार ज़्यादा करते हैं। रचनाकार का वास्तविक आशय क्या है, इस पर बहुत ध्यान देते हैं। इसके लिए वे प्रयुक्त शब्दों के अर्थ के ऐतिहासिक अध्ययन में प्रवृत्त होते हैं। इस प्रक्रिया से वे आलोचना के अनुशासन में न भी बँधें तो भी अर्थ का विस्तार करते हैं जो कि आलोचना का वास्तविक क्षेत्र है। इसीलिए द्विवेदी जी आलोचना-शास्त्र का अनुसरण न करके भी श्रेष्ठ आलोचकों में हैं। **मेघदूत – एक कहानी** इसीलिए आलोचना की पुस्तक के रूप में भी उपादेय है। **कालिदास की लालित्य-योजना** में उन्होंने कालिदास द्वारा प्रयुक्त अनेक शब्दों की व्याख्या की। द्विवेदी जी की व्याख्या ऐसी होती है कि उसके काव्यार्थ की पहचान हो जाती है। अंतिम दिनों में द्विवेदी जी का ध्यान विभिन्न कलाओं के विकास के संदर्भ में कविता के उद्भव और विकास की ओर गया था। इसे समझाने के लिए उन्होंने मिथक, नृतत्व विज्ञान आदि का गंभीर अध्ययन करके कुछ निबंध लिखे जिनका उपयोग **कालिदास की लालित्य-योजना** में हुआ है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी आलोचना का विकास प्रधानतः प्रगतिशील और व्यक्तिवादी आलोचना के द्वंद्व से हुआ है। प्रगतिशील आलोचना समाजवादी विचारधारा को लेकर चलती है। व्यक्तिवादी आलोचकों ने बहुत कुछ रूपवादी रुख अपनाया। इनका आग्रह इस ढंग से भी प्रकट हुआ कि कृति की विशिष्टता और उसके कलात्मक पक्ष को ध्यान में रखकर उसकी समीक्षा की जानी चाहिए। व्यक्तिवादी आलोचना में सभी प्रकार की विचारधारा से परहेज़ और यथासंभव रचना से उसे दूर रखने का आग्रह होता है। इस प्रकार की आलोचना अज्ञेय, लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती आदि के लेखों में मिलती है। इनमें से लक्ष्मीकांत वर्मा ने **नई कविता के प्रतिमान** नामक पुस्तक लिखी जिसमें 'नई कविता' की प्रवृत्तियों को रेखांकित करने का प्रयास है। उनके अनुसार 'लघु मानव' को काव्य का विषय बनाना और कविता को राजनीतिक वादों से बचाए रखना, 'नई कविता' का प्रधान लक्षण है। अज्ञेय ने रचना की निजता, स्वायत्तता और बाहरी अतिवादों से साहित्य को बचाए रखने पर ज़ोर दिया। अज्ञेय ने रचनात्मक

भाषा शैली को फैशन या रीति बना देना रचनात्मकता के लिए हानिकर बताया। धर्मवीर भारती ने अपनी पुस्तक **मानव मूल्य और साहित्य** में प्रगतिवादी रचनादृष्टि का विरोध किया। विजयदेव नारायण साही की आलोचना-दृष्टि इतिहास निरपेक्ष नहीं है। वे हिंदी साहित्य की परंपराओं का महत्त्व समझते हैं। समीक्षा करते समय उनका ध्यान लोक-जीवन और साहित्य पर भी रहता है। उन्होंने **लघु मानव के बहाने हिंदी कविता पर एक बहस, शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट** आदि विचारोत्तेजक आलोचनात्मक निबंध लिखे जिनकी गूँज बहुत दिनों तक बनी रही। उनकी मृत्यु (1983) के उपरांत **जायसी** पर उनका समीक्षात्मक ग्रंथ प्रकाशित हुआ जो काफी चर्चित हुआ।

प्रगतिशील आलोचकों में शिवदान सिंह चौहान, प्रकाश चंद्र गुप्त, डॉ. रामविलास शर्मा, चंद्रबली सिंह, डॉ. नामवर सिंह प्रमुख हैं। शिवदान सिंह चौहान और प्रकाश चंद्र गुप्त ने प्रगतिवादी दृष्टि से अनेक रचनाकारों, कृतियों और जनवादी समस्याओं पर फुटकल निबंध लिखे। इनकी भूमिका लेखकों और पाठकों को मार्क्सवादी चिंतन से परिचित कराने या उन्हें प्रेरित करने में है। प्रारंभ में प्रगतिशील आलोचना परंपरा का विरोध करने में संयम कम बरतती थी। **रामविलास शर्मा** (1912-2000 ई.) ने परंपरा का उचित मूल्यांकन करके प्रगतिशील समीक्षा को हिंदी की जातीय साहित्यिक परंपरा से जोड़ा। उन्होंने भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रेमचंद, निराला, रामचंद्र शुक्ल, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी पर परिश्रमपूर्वक गंभीर पुस्तकें लिखकर प्रगतिवादी-आलोचना को प्रतिष्ठित किया। निराला पर पहला लेख उन्होंने 1934 ई. में लिखा था। तब से लगभग 40 वर्षों तक वे साहित्य का अध्ययन-मनन करते रहे। इसका परिणाम **निराला की साहित्य-साधना** के तीन खंड हैं। डॉ. शर्मा ने निराला के व्यक्तित्व और साहित्य में अंतःसंबद्धता एवं अन्योन्याश्रय संबंध देखा। **निराला की साहित्य-साधना** के दो खंडों में निराला के साहित्य की समालोचना है। डॉ. शर्मा ने निराला के काव्य की समालोचना स्थापत्य को ध्यान में रखकर की है, जिसमें शब्द और अर्थ की विविधरूपता को एक भवन के आकार की तरह देखा जाता है। निराला की कविताओं को दुरूह समझा जाता रहा है। इसके लिए उनका उपहास भी किया जाता था। डॉ. शर्मा ने निराला की कविताओं में उनका विश्वबोध, तार्किकता, अर्थ-संगति खोजी, उन्हें 'अन्यतम मानवीय करुणा', 'वयस्क शृंगार' का कवि बताया। निराला के कला-पक्ष की विवेचना करते हुए डॉ. शर्मा ने आधुनिक समीक्षा के क्षेत्र में प्रचलित प्रायः सभी आलोचना पद्धतियों का उपयोग किया है। उन्होंने

हिंदी आलोचना को अनुचित रूपवादी आग्रह और वस्तुवादी एकांगिता से बचाकर उसकी समर्थ परंपरा का विकास किया।

डॉ. रामविलास शर्मा के आग्रहों और निष्कर्षों से सर्वत्र सहमत होना असंभव है। पंत, मुक्तिबोध, राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी पर जो उन्होंने लिखा है वह उनकी आलोचना का दुर्बल एवं एकाकी पक्ष है।

नामवर सिंह (जन्म 1927 ई.) मध्यकालीन और आधुनिक साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान हैं। हिंदी के समकालीन लेखन को वे सर्वाधिक प्रभावित करने वाले समालोचक हैं। अनेक भाषाओं के साहित्य पर उनकी निगाह रहती है जिससे उनका साहित्य-चिंतन पुष्ट होता रहता है। डॉ. नामवर सिंह ने समय-समय पर समसामयिक साहित्य की अनेक समस्याओं पर विचार करते हुए अनेक लेखों के अतिरिक्त **छायावाद, कहानी : नई कहानी, कविता के नए प्रतिमान** और **दूसरी परंपरा की खोज** नामक आलोचनात्मक पुस्तकें लिखी हैं। इनमें अंतिम पुस्तक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी पर है। इसके अतिरिक्त उनके लेखों का एक संकलन **इतिहास और आलोचना** नाम से प्रकाशित हो चुका है।

छायावाद में डॉ. नामवर सिंह ने छायावाद को अनेक प्रवृत्तियों का समुच्चय कहा जिसमें राष्ट्रीय जागरण की भावना केंद्र में थी। इस पुस्तक में उन्होंने छायावाद के भाव और कलापक्ष की विविध प्रवृत्तियों का विवेचन करके छायावाद के ऐतिहासिक महत्त्व एवं काव्योत्कर्ष की व्याख्या की।

कहानी : नई कहानी का महत्त्व इस बात में है कि इस पुस्तक के द्वारा हिंदी में कहानी-आलोचना की गंभीर परंपरा प्रारंभ हुई। हिंदी आलोचना इसके पूर्व प्रधानतः कविता की आलोचना थी। इसके द्वारा नई कहानी आंदोलन प्रतिष्ठित और परिभाषित हुआ। इसमें नई कहानी और पुरानी कहानी का अंतर बताया गया और प्रमुख हिंदी कहानियों की विवेचना-व्याख्या की गई।

कविता के नए प्रतिमान भी वस्तुतः नई कविता की ही विवेचना करती है। इसमें कविता का विश्लेषण करने में सहायक विभिन्न महत्त्वपूर्ण उपकरणों की व्याख्या नई कविता की व्यावहारिक आलोचना की प्रक्रिया में की गई है।

मुक्तिबोध प्रधानतः कवि थे। किंतु उन्होंने आलोचना के क्षेत्र में भी काम किया। **कामायनी : एक पुनर्विचार** में उन्होंने कामायनी को बृहद फैंटेसी कहा और मनु को ध्वस्त होती हुई सामंती व्यवस्था का प्रतीक। कहने की आवश्यकता नहीं कि उनकी यह

आलोचना कृति विचारोत्तेजक थी किंतु अब वह मान्य हो चली है। मुक्तिबोध ने पंत, त्रिलोचन, शमशेर, दिनकर की उर्वशी आदि पर मौलिक विचार प्रस्तुत करके अपनी आलोचनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया। कविता की रचना-प्रक्रिया संबंधी उनके विचार उनके सूक्ष्म काव्य-चिंतन का परिचय देते हैं।

चंद्रबली सिंह प्रतिभाशाली प्रगतिवादी आलोचक हैं जिनके निबंध **'लोक दृष्टि और साहित्य'** में संकलित हैं। श्री विजयशंकर मल्ल, डॉ. बच्चन सिंह, डॉ. शिवकुमार मिश्र, डॉ. रमेश कुंतल मेघ आदि अन्य उल्लेखनीय प्रगतिशील आलोचक हैं।

डॉ. देवराज और डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी किसी विचारधारा या साहित्यिक सिद्धांत से प्रतिबद्ध आलोचक नहीं हैं। उनकी आलोचना में एक प्रकार का खुलापन है। डॉ. देवराज दर्शन के अध्यापक हैं। उनकी आलोचना का स्तर गंभीर होता है और निष्कर्ष स्पष्ट। उन्होंने **छायावाद का पतन** लिखकर ख्याति प्राप्त की।

देवीशंकर अवस्थी, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी समीक्षा में भाषा-प्रयोग की विवेचना को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। वे उन आलोचकों में है जो साहित्य की परीक्षा के लिए भाषा को सर्वाधिक विश्वसनीय साधन मानते हैं। आलोचना के क्षेत्र में **तारसप्तक** के कवि नेमिचंद्र जैन का भी उल्लेखनीय योगदान है। **रंगदर्शन** पुस्तक के माध्यम से नाट्यालोचन के क्षेत्र में उन्होंने मूल्यांकन की नई कसौटियाँ कायम कीं। **अधूरे साक्षात्कार** में उपन्यास की आलोचना की नई भाषा विकसित करने की कोशिश की। **बदलते परिप्रेक्ष्य** तथा **जनांतिक** उनकी अन्य महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक पुस्तकें हैं।

इधर हिंदी आलोचना पर शैलीविज्ञान और संरचनावाद का प्रभाव पड़ा। वस्तुतः शैलीविज्ञान या संरचनात्मक विश्लेषण समालोचना के उपकरण हैं, समालोचना नहीं। इन दोनों विषयों पर डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव ने प्रचुर जानकारी देने वाली पुस्तकें लिखी हैं।

अन्य महत्त्वपूर्ण आलोचकों में सुरेंद्र चौधरी, धनंजय वर्मा, नित्यानंद तिवारी, मैनेजर पांडेय, परमानंद श्रीवास्तव, खगेंद्र ठाकुर, डॉ. निर्मला जैन, डॉ. धर्मवीर, श्योराज सिंह 'बेचैन' के नाम उल्लेखनीय हैं।

अन्य गद्य विधाएँ

रिपोर्ताज

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान रांगेय राघव ने अकाल-पीड़ित बंगाल का दौरा करके **तूफ़ानों के बीच** नामक रिपोर्ताज लिखा। वस्तुतः यह विधा अखबार की रपट के बहुत

नज़दीक है। इसका उद्‌भव भी द्‌वितीय विश्व युद्‌ध के दौरान कुछ साहसी पत्रकारों की रपटों से हुआ। इसी विधा में अमृतराय की **लाल धरती** और भगवत शरण उपाध्याय की पुस्तक **इतिहास के पन्नों पर खून के धब्बे** की भी गणना हो सकती है। नरोत्तम नागर, रामशरण शर्मा मुंशी आदि ने अनेक सफल रिपोर्ताज लिखे हैं। अश्क ने **पहाड़ों में प्रेममय संगीत**, भदंत आनंद कौसल्यायन ने **देश की मिट्‌टी बोलती है**, शमशेर बहादुर सिंह ने **प्लाट का मोर्चा** और बंगला देश के स्वतंत्रता-युद्‌ध के दौरान धर्मवीर भारती ने **ब्रह्मपुत्र के मोर्चे से** तथा विष्णुकांत शास्त्री ने भी युद्‌ध संबंधी रिपोर्ताज लिखे। आज रेडियो, दूरदर्शन से अनेक ऐसे कार्यक्रम प्रसारित होते हैं, जिन्हें रिपोर्ताज कह सकते हैं।

आत्मकथा और जीवनी

आत्मकथा – हिंदी में अकबर कालीन जैन कवि बनारसीदास ने ही **अर्ध कथानक** नाम से आत्मकथा लिखी थी। आधुनिक हिंदी साहित्य में आत्मकथा सबसे पहले **डा. श्यामसुंदर दास** ने लिखी। गांधी जी ने अपनी आत्मकथा मूलतः गुजराती में और नेहरू जी ने अंग्रेज़ी में लिखी थी। डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा हिंदी में लिखी। बच्चन ने अपनी आत्मकथा **क्या भूलूँ क्या याद करूँ, नीड़ का निर्माण फिर, बसेरे से दूर** और **दश द्‌वार से सोपान तक** नाम से चार खंडों में लिखी। राहुल जी ने **मेरी जीवन-यात्रा** नाम से अनेक खंडों में आत्मकथा लिखी। यशपाल के **सिंहावलोकन** को भी आत्मकथा की ही कोटि में रखा जाएगा। सेठ गोविंद दास की आत्मकथा भी उल्लेखनीय है। इस बीच ओमप्रकाश वाल्मीकि की **जूठन** प्रकाशित हुई जो हिंदी के आत्मकथा साहित्य में ऐतिहासिक महत्त्व रखती है।

जीवनी – आधुनिक साहित्य में भारतेंदु की जीवनी ब्रजरत्न दास ने लिखी। फिर प्राचीन महापुरुषों और प्रेरणाप्रद व्यक्तियों की अनेक जीवनियाँ लिखी गईं। स्वतंत्रता के उपरांत जो उल्लेखनीय जीवनी-साहित्य हिंदी में लिखा गया उसमें चंद्रशेखर शुक्ल का **रामचंद्र शुक्ल**, डॉ. रामविलास शर्मा का **निराला की साहित्य साधना** (तीसरा खंड), अमृतराय का **प्रेमचंद – कलम का सिपाही**, विष्णु प्रभाकर का **आवारा मसीहा**, विष्णु चंद्र शर्मा द्‌वारा लिखित **मुक्तिबोध की आत्मकथा** प्रसिद्‌ध हैं।

रेखाचित्र, संस्मरण

रेखाचित्र और संस्मरण भी आधुनिक गद्य विधाएँ हैं। हिंदी रेखाचित्र साहित्य में महादेवी वर्मा का नाम सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। 1947 ई. में **स्मृति की रेखाएँ** प्रकाशित हुआ जो संस्मरण और रेखाचित्र दोनों हैं। इसके पूर्व 1941 ई. में उनका **अतीत के चल-चित्र** प्रकाशित हो चुका था। महादेवी जी ने उपेक्षित एवं शोषित व्यक्तियों और पशु-पक्षियों को संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में अपार ममता दी है। इनसे महादेवी जी का भी व्यक्तित्व उजागर होता है। शिवपूजन सहाय का रेखाचित्र संकलन **वे दिन, वे लोग** 1965 में प्रकाशित हुआ। उपेंद्रनाथ अश्क का **मंटो मेरा दुश्मन** 1957 ई. के आस-पास प्रकाशित हुआ। संस्मरण लिखने वालों में प्रसिद्ध पत्रकार पं. बनारसीदास चतुर्वेदी का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन के शहीदों, नेताओं एवं साहित्यकारों पर प्रेरक संस्मरण लिखे। श्री राय कृष्णदास ने भारतेंदु से संबंधित दुर्लभ संस्मरण लिखे। रामवृक्ष बेनीपुरी के कुछ अविस्मरणीय संस्मरण **माटी की मूरतें** में संकलित हैं।

यात्रा-वृत्तांत

इस युग में लेखकों ने अनेक यात्रा-वृत्तांत लिखे। आधुनिक युग में इसका भी प्रवर्तन भारतेंदु ने किया था। प्रमुख यात्रा-वृत्तांत लेखक और उनकी कृतियाँ इस प्रकार हैं – राहुल सांकृत्यायन **(मेरी चीन यात्रा** आदि), भगवतशरण उपाध्याय **(वो दुनिया, सागर की लहरों पर)**, अज्ञेय **(अरे यायावर रहेगा याद, एक बूंद सहसा उछली)**, यशपाल **(लोहे की दीवार के दोनों ओर, स्वर्गोद्यान बिना साँप)**, रामवृक्ष बेनीपुरी **(पाँवों में पंख बांधकर)**, निर्मल वर्मा **(चीड़ों पर चाँदनी)**, कमलेश्वर **(खंडित यात्राएँ, रात के बाद)**, प्रभाकर द्विवेदी **(पार उतरि कहँ जइहौ, धूप में सोई नदी)**। अमृतलाल बेगड़ **(सौंदर्य की नदी नर्मदा)**।

कविता

यों तो हिंदी कविता की प्रायः सभी पूर्व प्रवृत्तियाँ स्वातंत्र्योत्तर काल में भी परिलक्षित होती हैं, किंतु नई काव्य-प्रवृत्ति के रूप में सबसे अधिक चर्चा **नई कविता** की हुई।

1951 ई. में **दूसरा सप्तक** और 1959 ई. में **तीसरा सप्तक** प्रकाशित हुआ। संपादक अज्ञेय ही थे। **तार सप्तक** (पहला सप्तक) 1943 ई. में प्रकाशित हुआ था जिसका प्रमुख स्वर प्रगतिशील काव्य का था। दूसरे और तीसरे सप्तक में स्थिति भिन्न हो गई। दूसरे सप्तक के कवि हरिनारायण व्यास, भवानीप्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, शकुंत माथुर, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती थे। तीसरा सप्तक के कवि थे – प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कुँवर नारायण, कीर्ति चौधरी, केदारनाथ सिंह, मदन वात्स्यायन, विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना। इसी बीच मासिक पत्रिका **प्रतीक** का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसके संपादक अज्ञेय थे। फिर **निकष, नई कविता** आदि साहित्यिक पत्रिकाएँ लगातार निकलीं। ये सामाजिक प्रतिबद्धता से कविता को दूर ले जाना चाहती थीं। उनकी मुख्य चिंता यह थी कि कविता के क्षेत्र में राजनीति को प्रवेश नहीं मिलना चाहिए। **प्रयोगवाद** प्रगतिशील काव्यधारा के समानांतर प्रवाहित होने वाली काव्य प्रवृत्ति है। इसमें कविता की निजता की सुरक्षा का आग्रह है। प्रयोगवाद में मोहभंग और उससे उत्पन्न व्यंग्य-विद्रूपता की मनःस्थिति प्रमुख है। स्वाधीनता के उपरांत व्यवस्था से असंतोष और द्वितीय विश्वयुद्ध में नरसंहार के कारण मानवीय प्रयत्नों पर से विश्वास उठ गया। देश-काल की असीमता के बोध ने मनुष्य को नगण्य बना दिया। इससे शिक्षित युवा-कवियों के मन में एक प्रकार के मोह भंग की स्थिति पैदा हुई। यह अज्ञेय और प्रभाकर माचवे की कविताओं में दिखलाई पड़ने लगता है। इसी मनःस्थिति में अज्ञेय चाँदनी को 'वंचना' कहते हैं और प्रभाकर माचवे लिखते हैं –

विज्जाकाया के दो पद्य सुनकर चित्त हुआ गद्गद्।

'गद्गद्' होना गद्गद होने का मज़ाक उड़ाना हुआ।

यह प्रवृत्ति प्रपद्यवाद में और आगे बढ़ी जिसमें मन को बिलकुल खुला छोड़कर कविता हुई तथा अनगढ़ और अपरिचित शब्दों का प्रयोग भी बहुत हुआ।

नई कविता

प्रयोगवाद में प्रयोग पर बल है। नई कविता में प्रयोग पर बल नहीं है। यह स्मरण रखना चाहिए कि कालांतर में मुक्तिबोध जैसे प्रगतिशील कवि ने भी स्वयं को नई कविता का कवि घोषित किया। नई-कविता के कवियों में लक्ष्मीकांत वर्मा, जगदीश गुप्त, धर्मवीर भारती, विजयदेव नारायण साही, विपिन अग्रवाल एवं श्रीराम वर्मा प्रमुख हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत यूरोप में अस्तित्ववाद की लहर तेज़ी से फैली। सार्त्र और कामू इसके नए विचारक बने। अनिश्चय, चयन की पीड़ा, मानव-इतिहास की व्यर्थता, मृत्यु का संत्रास इसके प्रमुख सूत्र हैं। इससे हिंदी के विचारक और कवि भी प्रभावित हुए। अजनबीपन की बात यहाँ भी होने लगी। जिन ऐतिहासिक स्थितियों में यह यूरोप में बीसवीं सदी में प्रभावशाली बना था, वे स्थितियाँ भारत में नहीं थीं। लेकिन विचार में इससे प्रभावित होना अस्वाभाविक नहीं था। विशेष रूप से अज्ञेय, धर्मवीर भारती जैसे कवियों के लिए, जिनकी कविता 'साहित्येतर' अतिरेकों से अपने को सुरक्षित रखना चाहती थी। समाजवादी विचारधारा द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत अस्तित्ववाद की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक पैमाने पर फैल रही थी। अनेक नए देशों में समाजवादी व्यवस्था आ गई थी। इससे कुछ कवियों को आशंका हुई।

अज्ञेय 'साहित्य एवं व्यक्ति की सुरक्षा' के प्रतिनिधि कवि हैं। उन्हें व्यक्तिवादी कवि कहा गया है। **नदी के द्वीप, यह दीप अकेला** आदि उनकी प्रतिनिधि कविताएँ हैं जो साहित्य की विशिष्टता की सुरक्षा और व्यक्ति-स्वातंत्र्य का प्रतिपादन करती हैं। एकरूपता की अस्वीकृति अज्ञेय की कविताओं की टेक है। उनके बिंब भी प्रायः ऐसे होते हैं जहाँ एकरूपता को चीर कर कोई दूसरी वस्तु अकेली गतिशील होती है। अज्ञेय जहाँ अपने व्यक्तित्व को किसी दृश्य या विचार में तल्लीन कर लेते हैं वहाँ वे उत्कृष्ट काव्य रचते हैं। उन्होंने प्रकृति पर अनेक उत्कृष्ट कविताएँ लिखी हैं।

नई कविता में सभी वादों से मुक्ति और 'लघुमानव' के महत्त्व की प्रतिष्ठा की गई है। इस प्रवृत्ति से यह अवश्य हुआ कि व्यक्ति की सामान्य मनःस्थितियों को अभिव्यक्त करने वाली कुछ ऐसी कविताएँ लिखी गईं जो सचमुच नई थीं। नई कविता के कवि मध्यवर्गीय व्यक्ति के मन की जटिलताओं को अधिक अपनापे से प्रकट करते हैं—यद्यपि उन्हें समझने का उतना प्रयास नहीं करते।

1960 ई. के बाद **अकविता** का जो दौर आया उसमें अस्वीकृति का तेवर सीमा पर पहुँच गया। अकविता का आशय ऐसी काव्य-प्रवृत्ति से था जैसी कविता अब तक नहीं हुई है। इसके लिए उसके नाम में ही परंपरा को पूरी तरह नकारने का भाव था। वस्तुतः यह विवेक पक्ष की उपेक्षा करके विद्रोह या व्यवस्था विरोध की काव्य प्रवृत्ति थी। अकविता के बाद एक बार फिर प्रगतिशील चेतना संपन्न युवा कवियों की कविताएँ कविता की मुख्यधारा बनी।

नई कविता की प्रवृत्तियाँ

- नई कविता 'लघुमानव' की कविता है। लघुमानव से आशय दिशाहारा एवं विचारधारा से रहित उपेक्षित सामान्य मनुष्य से है।
- नई कविता अपने को राजनीति से दूर रखती है। वह समाजवादी और पूँजीवादी दोनों शिविरों से समान दूरी रखती है।
- नई कविता लघुमानव के दैनंदिन सामान्य अनुभवों की अभिव्यक्ति करने में विश्वास रखती है।
- मुक्तिबोध ने **नई कविता** शब्द का प्रयोग व्यापक काव्यधारा के अर्थ में किया है।

प्रगतिशील काव्यधारा

प्रगतिशील काव्यधारा के कुछ कवियों का उल्लेख हम पिछले अध्याय में भी कर चुके हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में योगदान देने वाले कुछ अन्य कवियों एवं उनकी काव्य प्रवृत्तियों की चर्चा यहाँ की जा रही है। **शमशेर बहादुर सिंह** (1911-1993 ई.) यद्यपि प्रगतिशील चेतना के कवि हैं किंतु उनकी कविताएँ मन की गहरी परतों को सांकेतिकता और बहुत कुछ चित्रकला की सहायता से खोलती हैं। शमशेर बहादुर की कविताएँ शब्दों की बहुत मितव्ययिता बरतती हैं। अतः अर्थ निकालने का प्रयास काफी करना पड़ता है। इसी कारण उनकी कविताओं में मौन की (यानी जो कहा जाना चाहिए किंतु नहीं कहा गया) महिमा मिलती है। उनकी कविताएँ सहज उक्तियों में ढलकर सुगम हो जाती हैं। **अमन का राग, सलोना जिस्म, आओ न** ऐसी ही कविताएँ हैं।

गिरिजा कुमार माथुर (1919-1994 ई.) और **नरेश मेहता (1922-2000 ई.)** प्रगतिशील कवियों के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं। नरेश मेहता बिंबों का प्रयोग करने में कुशल हैं। वे प्रगतिशीलता को सौंदर्य की व्यापक भूमि पर देखने वाले कवि के रूप में विख्यात हुए थे। उनकी **समय देवता** कविता एक 'विराट गतिशील बिंब' बनाती है। बाद में वैष्णव भावना और विशिष्ट भाषा-प्रयोग की ओर उनकी रुचि बढ़ गई।

गिरिजा कुमार माथुर इंद्रिय बोध के कवि हैं। उनके अनेक गीतों में रूप-वर्णन का आकर्षक चित्रण होता रहा। उनमें संगीतात्मकता का गुण भी है। बाद में वे नई कविता और उसमें भी वैज्ञानिकता का प्रभाव लाने में अधिक व्यस्त रहे। **पृथ्वीकल्प** इसी का परिणाम है।

भवानी प्रसाद मिश्र (1914-1985 ई.) भाषा के चलतेपन और भावों के खुलेपन के कवि हैं। उनकी कविताओं के प्रभाव के विषय में उनकी वाचन-पद्धति को भूलकर सोचना कठिन है। वे स्थितियों को सहजता से संयोजित करके प्रबंधकार के ढंग से मार्मिकता पैदा करते हैं। **सतपुड़ा के जंगल** में उनकी प्रबंध-प्रतिभा की झलक मिल जाती है। उनकी काव्य भाषा सहज किंतु मार्मिक हैं।

1964 ई. में मुक्तिबोध की मृत्यु हिंदी कविता के लिए एक ऐतिहासिक घटना बन गई। मुक्तिबोध सप्तक के कवि थे, लेकिन उनका कोई काव्य संकलन नहीं छपा था। उनकी लंबी कविताओं ने बहुत कम लोगों का ध्यान आकृष्ट किया था। अंतिम बीमारी में लोगों का ध्यान उनके जीवन-संघर्ष और काव्य-संघर्ष की ओर गया। मरणासन्न स्थिति में उनका प्रथम काव्य संकलन **चाँद का मुँह टेढ़ा है** (1964) प्रकाशित हुआ। लोगों को पता चला कि मुक्तिबोध की कविताएँ स्वाधीन भारत का 'इस्पाती दस्तावेज़' हैं। मुक्तिबोध अमानवीय व्यवस्था में पनपे और प्रचलित रुग्ण सौंदर्य-बोध के स्थान पर नए मानवीय प्रगतिशील सौंदर्य-बोध का निर्माण करते हैं। मुक्तिबोध स्वातंत्र्योत्तर भारत में दिखाई पड़ने वाले कथनी और करनी के अंतर को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करते हैं। इसके लिए वे स्वप्न कथा या फैंटेसी की शैली अपनाते हैं। मुक्तिबोध को परंपरा का गहरा बोध है। वे करुणा के कवि हैं। उनकी भाषा शैली और उनका सादृश्य-विधान बिल्कुल अपना है। वे गहन अनुभूति और तीव्र इंद्रिय-बोध के कवि हैं।

चाँद का मुँह टेढ़ा है के प्रकाशन-काल के ही लगभग **धूमिल** (1936-1975 ई.) ने काव्य-रचना प्रारंभ की। धूमिल का रचनाकाल केवल एक दशक रहा होगा, लेकिन स्वातंत्र्योत्तर भारत में पनपी-पली अवसरवादी सुविधाजीविता के वास्तविक रूप को उद्घाटित करने की क्षमता के कारण उनकी कविताओं ने शीघ्र ही अपनी ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट कर लिया। धूमिल की कविता का तेवर जासूसी है जो छिपे-छिपाए मानव-विरोधी व्यवहार को ताड़ लेती है। **संसद से सड़क तक, कल सुनना मुझे** और **सुदामा पांडे का प्रजातंत्र** उनके काव्य संकलन हैं।

मुक्तिबोध और धूमिल की कविताओं से हिंदी कविता में एक प्रकार से प्रगतिशील कविता की धारा व्यापक और वेगवती हुई। कविता में दिन-प्रतिदिन होने वाली घटनाओं को महत्त्व देने से अखबारीपन भी आ गया।

इसका परिणाम हुआ कि **रघुवीर सहाय** (1929-1990 ई.), **सर्वेश्वर दयाल सक्सेना** (1927-1983 ई.), **केदारनाथ सिंह** (जन्म 1934 ई.) जैसे कवि सामाजिक यथार्थ की ओर उन्मुख हुए। सामान्य से सामान्य एवं परिचित से परिचित स्थिति में कुछ ऐसा देख लेना कि वह पहली बार मार्मिक लगे, रघुवीर सहाय की अचूक क्षमता है। लेकिन इस क्षमता का उपयोग पहले वे अधिकांशतः दृश्यों या मन की गहरी परतों को उघाड़ने में ही करते थे या व्यंग्य-विनोद में। बाद में उनकी कविताएँ गहरी राजनीतिक हुई हैं।

राष्ट्रगीत में भला कौन वह भारत-भाग्य विधाता है।
फटा सुथन्ना पहने जिसका गुन हरचरना गाता है।

लगता है जैसे नागार्जुन की पंक्तियाँ हों। **रामदास** जैसी संत्रास पैदा करने वाली कविताएँ हिंदी में कम लिखी गई होंगी। इस दृश्य की अति सामान्यता देखिए और इसके प्रभाव की गहराई –

मैंने गोद में बच्चा लिए स्त्री को बस में चढ़ते देखा
और मेरे मन में दूर तक कुछ घिसटता-सा चला गया।

राजनीतिक दबाव सर्वेश्वर की **कुआनो नदी** और केदारनाथ सिंह की **यहाँ से देखो** संकलन की कविताओं में द्रष्टव्य है। **श्रीकांत वर्मा** पर भी राजनीति का दबाव देखा जा सकता है। उन्होंने राजसत्ता, इतिहास और काल बोध का संश्लेष **मगध** की कविताओं में किया है।

राजनीतिधर्मा होने से हिंदी कविता के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन की ओर नई पीढ़ी का ध्यान नए सिरे से गया और वे कवि नई पीढ़ी के लिए अत्यंत प्रासंगिक हो उठे।

आधुनिक कविता ने तुक, छंद, अलंकार आदि का मोह छोड़कर गद्यात्मकता को यथार्थ-चित्र के लिए अपनाया था। लेकिन व्यक्तिवादी कवियों ने गद्यात्मकता को अपनाकर भी उसे और अमूर्त बना दिया। नागार्जुन, केदार, त्रिलोचन अधिकांशतः छंदों और तुकों में लिखते हैं। उनके यहाँ बोध और चित्रात्मकता कभी नहीं छूटते। उनका वाक्य गठन सुव्यवस्थित रहता है। इस विषय में **त्रिलोचन** की ठेठ भाषा का ठाठ अन्यत्र दुर्लभ है। नागार्जुन ने अपना बनाया हुआ काव्य-मार्ग कभी नहीं छोड़ा। वे दोहा, मंत्र, हर गंगा, सब लिखते रहें – बिना इस बात की परवाह किए कि लोग उन्हें आधुनिक समझेंगे या

नहीं। देश अपने विविध रूपों में इन कवियों के यहाँ मौजूद हैं। इनके फिर से प्रासंगिक होने का यही रहस्य आदि हैं।

इसी काल में गीत के क्षेत्र में भी कुछ उल्लेखनीय नाम उभर कर आए जिनमें वीरेंद्र मिश्र, शंभुनाथ सिंह, रमानाथ अवस्थी, ठाकुर प्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, रवींद्र भ्रमर, मुकुट बिहारी सरोज, गोपालदास नीरज आदि हैं।

समकालीन हिंदी काव्यधारा में अनेक दृष्टियों के कवि एक साथ रचनारत हैं। इसमें एक ओर त्रिलोचन, नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल जैसे प्रगतिशील कवि रचनारत रहे हैं तो दूसरी ओर अकविता, साठोत्तरी कविता, जनवादी कविता आदि धाराओं में बँटे कवि भी। इस काव्य युग में विभिन्न आयु वर्ग और विचारधाराओं के कवि मौजूद हैं। उनकी रचनाशीलता में काव्य-संवेदना, विषयवस्तु, शिल्प और भाषा संबंधी विविधता है जिससे समकालीन हिंदी कविता समृद्ध हुई है। ऐसे कवियों में अजित कुमार, अशोक वाजपेयी, विनोद कुमार शुक्ल, विष्णु खरे, सोमदत्त, स्नेहमयी चौधरी, कुमार विकल, लीलाधर जगूड़ी, चंद्रकांत देवताले, प्रयाग शुक्ल, ऋतुराज और भगवत रावत जैसे वरिष्ठ कवि हैं तो दूसरी ओर अरुण कमल, मंगलेश डबराल, राजेश जोशी, नरेश सक्सेना, कात्यायनी, निर्मला गर्ग, अनामिका, एकांत श्रीवास्तव, कुमार अंबुज, संजय चतुर्वेदी आदि युवा पीढ़ी के कवि भी हैं जो हिंदी काव्य संसार को नया तेवर और नया मुहावरा प्रदान कर रहे हैं।

साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ

साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ साहित्य का मंच हैं। उनमें साहित्य के विविध रूप ही नहीं, आंतरिक विवाद, प्रेरणा, पाठक वर्ग की प्रतिक्रिया अर्थात समूचा साहित्य एवं साहित्यकार-संसार होता है। जो साहित्य पुस्तक-रूप में नहीं आ पाता, वह भी अपने मूलरूप में पत्रिकाओं में मिल जाता है। इसीलिए उनके संरक्षण की आवश्यकता अनुभव की जाती है। हिंदी के विविध आंदोलन और साहित्यिक प्रवृत्तियों को उद्भूत एवं सक्रिय करने में पत्रिकाओं की अग्रणी भूमिका रही है। **हरिश्चंद्र चंद्रिका, कविवचन सुधा, सरस्वती, हिंदी प्रदीप, मतवाला, विशाल भारत, हंस, रूपाभ** का नाम अपने-अपने समय की साहित्यिक प्रवृत्ति और युग से जुड़ा है। हिंदी साहित्य की सर्जना और बोध की प्रक्रिया इन पत्रिकाओं के माध्यम से ही संचालित और अभिव्यक्त हुई।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में **हंस, प्रतीक, कल्पना, वसुधा, नई कविता, ज्ञानोदय** ने साहित्य को विकसित एवं प्रचारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वातंत्र्योत्तर युग की साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादन के क्षेत्र में महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसी परंपरा का पालन यदि किसी साहित्यकार ने किया है तो भैरवप्रसाद गुप्त ने। उन्होंने **कहानी और नई कहानियाँ** के माध्यम से हिंदी कहानी के विकास में ऐतिहासिक योगदान किया।

कालांतर में हिंदी में लघु पत्रिकाओं का आंदोलन चला। उसका कारण यह है कि हिंदी की पत्रिकाएँ भी पूँजीपतियों के कब्ज़े में आ गईं। लघु पत्रिकाएँ प्रायः प्रगतिशील साहित्यकारों ने निकालीं। यदि लघु पत्रिका कोई पत्रकारिता आंदोलन था तो इसके प्रवर्तन का श्रेय श्री विष्णु चंद्र शर्मा को मिलना चाहिए। उन्होंने सन 1958 में काशी से **कवि** नामक पत्रिका प्रकाशित-संपादित की। इसका साहित्यिक स्तर ऊँचा था। **दस्तावेज़, पहल, अब, उत्तरशती, उत्तरार्द्ध, कथन, कथादेश, वागार्थ, तद्भव, कल के लिए, सर्वनाम** आदि कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण साहित्यिक पत्रिकाएँ हैं जो समकालीन हिंदी रचनाशीलता को विकसित और प्रोत्साहित कर रही हैं।

इधर **आलोचना** नामक प्रसिद्ध समीक्षा पत्रिका डॉ. नामवर सिंह के संपादन में फिर से प्रकाशित होने लगी। इसके प्रथम संपादक **श्री शिवदान सिंह चौहान** थे। समीक्षा की ही एक अन्य पत्रिका– **समालोचक** डॉ. रामविलास शर्मा के संपादन में आगरा से कुछ दिनों तक निकलती रही।

सरकार भी साहित्य को प्रोत्साहन देने और उसका प्रचार करने के उद्देश्य से कुछ साहित्यिक पत्रिकाएँ निकाल रही हैं। इनमें **आजकल** प्रमुख है। इधर मध्य प्रदेश सरकार सांस्कृतिक गतिविधियों के क्षेत्र में सक्रिय हुई है। भोपाल से **पूर्वग्रह** और **साक्षात्कार** नामक स्तरीय पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। साहित्य अकादमी की ओर से सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य को हिंदी में प्रस्तुत करने वाली पत्रिका **समकालीन भारतीय साहित्य** प्रकाशित हो रही है। हिंदी साहित्य सम्मेलन से **सम्मेलन-पत्रिका** और **माध्यम**, नागरीप्रचारिणी सभा की ओर से **नागरीप्रचारिणी पत्रिका** भी प्रकाशित हो रही है। **हंस** राजेंद्र यादव के संपादन में पुनः प्रकाशित हो रहा है।

ज्ञान का साहित्य

स्वाधीन भारत में हिंदी में ज्ञान-विज्ञान के साहित्य का विकास हो रहा है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने **सरस्वती** के माध्यम से यह काम 1900 ई. के आस-पास ही प्रारंभ कर दिया था। इस युग में राहुल सांकृत्यायन, आचार्य नरेंद्र देव, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. भरत सिंह उपाध्याय, जयंत विष्णु नार्लीकर, गुणाकर मुले आदि ने विशेष कार्य किया है। आचार्य नरेंद्र देव, डा. लोहिया ने प्राचीन भारतीय साहित्य और संस्कृति पर, डॉ. रामविलास शर्मा ने भारतीय भाषाओं, मार्क्सवाद और भारतीय राजनीति पर और डॉ. भरत सिंह उपाध्याय ने बुद्ध कालीन भारतीय भूगोल पर अत्यंत परिश्रमपूर्वक अनुसधान किया। राहुल जी का इस क्षेत्र में सर्वाधिक योगदान रहा। उन्होंने मध्य एशिया, नेपाल और तिब्बत का इतिहास लिखा। विज्ञान और भारतीय भाषाओं के क्षेत्र में भी उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। पं. किशोरीदास वाजपेयी का **हिंदी शब्दानुशासन** इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। इस क्षेत्र में अनेक सरकारी, अर्ध सरकारी संस्थाएँ भी कार्यरत हैं। नागरीप्रचारिणी सभा (काशी), हिंदी साहित्य सम्मेलन (प्रयाग), विज्ञान परिषद् (प्रयाग), बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् आदि ने इस क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है। राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी और हरियाणा साहित्य अकादमी भी इस क्षेत्र में सक्रिय हैं। प्रायः सभी मंत्रालयों में हिंदी एकक स्थापित हैं जो सरकारी कामकाज़ का हिंदी अनुवाद करते हैं। केंद्र में भी अनुवाद ब्यूरो स्थापित है। हिंदी समिति उत्तर प्रदेश आदि ने ज्ञान-विज्ञान से संबद्ध अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद कराया है।

उपसंहार

हिंदी साहित्य का इतिहास लगभग 1000 वर्ष पुराना है। यह प्रारंभ से ही अनेक प्रवृत्तियों का समुच्चय रहा है और इसमें अनेक मत-मतांतरों की वाणी अभिव्यक्त हुई है। हिंदी साहित्य के आदि कालीन साहित्य में ही वीरगाथाओं के साथ-साथ नाथ-सिद्धों, जैन-मुनियों और विष्णु के अवतारों की लीला से संबंधित रचनाएँ मिलती हैं। इसी काल में अब्दुल रहमान या अद्दहमाण नामक कवि की रचना भी मिली। हिंदी साहित्य अपने प्रारंभिक काल से ही व्यापक और बहुलतावादी दृष्टि का प्रतीक रहा है। कहना न होगा कि हिंदी साहित्य अपनी भौगोलिक विशालता और भाषा की विविधता की सक्षम अभिव्यक्ति है। विशालता एवं बोलियों की विविधता के बावजूद उसमें वह केंद्रोन्मुखता भी है जो उसे विशिष्टता प्रदान करती है।

भक्ति काल को हिंदी साहित्य के इतिहास का 'स्वर्ण काल' कहा जाता है। हिंदी साहित्य के बारे में जिस व्यापकता की बात कही गई है उसका सर्वोत्तम निदर्शन भक्ति काल में होता है। भक्ति काव्य में हिंदी भाषी क्षेत्र की भावना भक्ति का सहारा लेकर मानो ऊँच-नीच की सारी असमानता-विषमता दूर करने का रचनात्मक प्रयास कर रही थी। कबीर का शून्य-सरोवर, सूर का रास-मंडल और तुलसी का राम-राज्य आध्यात्मिक पद तो हैं ही, वे सर्व सुखद मानवीय स्वप्न भी हैं। हिंदी का भक्ति साहित्य हिंदी जाति का उदात्त, महान रचना-लोक है जो आज भी प्रासंगिक एवं प्रेरणाप्रद है। भक्ति-साहित्य ने हिंदी को कबीर, नानक, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा जैसे रचनाकार दिए जिनके कारण वह संसार के समृद्ध से समृद्ध भाषा-साहित्य के साथ स्वाभिमानपूर्वक खड़ा हो सकता है।

रीति कालीन साहित्य का प्रधान स्वर शृंगार का है। इसी शृंगार में भक्ति भी लिपटी है। इस काल का संपूर्ण साहित्य दरबारी नहीं है। वस्तुतः अनेक दरबारी कवियों ने भी

कवियों की दरबारी प्रवृत्ति की आलोचना की है। रीति काल के साहित्य में सामान्य लोक जीवन के गार्हस्थिक रहन-सहन का सजीव चित्रण मिलता है। रीतिमुक्त कवियों ने निश्छल, सहज प्रेमभावना की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर ने उत्कृष्ट कोटि की ऐसी रचनाएँ की हैं जो आज के सहृदय पाठक को भी आनंद देती हैं। रीति कालीन कवियों में भूषण अपनी वीरतापरक रचनाओं के चलते विशिष्ट हैं तो बिहारी 'गागर में सागर भरने' की क्षमता के कारण।

नवजागरण आधुनिक युग के प्रवर्तन का आधार है। हिंदी साहित्य में आधुनिकता के प्रवर्तक भारतेंदु हैं। उन्होंने साहित्य में सामाजिक यथार्थ की चेतना का नए सिरे से समावेश किया। भारतेंदु युग में निबंध जैसी नई विधा का सूत्रपात हुआ और लोक प्रचलित नाट्य-रूपों से मिलते-जुलते व्यंग्यधर्मी नाटकों का प्रचलन हुआ। द्विवेदी युग में भाषा के मानकीकरण एवं नए ज्ञान-विज्ञान से हिंदी साहित्य को समृद्ध करने पर बल दिया गया। ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

गांधी युग प्रधानतः स्वाधीनता प्राप्ति के लिए राजनीतिक संघर्ष का युग है किंतु उसका प्रभाव हिंदी क्षेत्र की सांस्कृतिक चेतना पर भी पड़ा। यह युग वस्तुतः यथार्थ-चित्रण और स्वप्निल कल्पना का युग है। इसमें एक ओर प्रेमचंद का यथार्थवादी लेखन है तो इसी के साथ छायावादी स्वप्न-लोक भी। कुल मिलाकर इस युग का साहित्य लोक-शक्ति की साधना का साहित्य है। उस साधना का जिसकी सिद्धि स्वाधीनता-प्राप्ति के रूप में हुई। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद पंचवर्षीय योजनाओं और आम चुनाव से भारतीय समाज, विशेषतः ग्रामीण-समाज की स्थिर-एकरसता टूटने लगी। शिक्षित युवक रोज़गार के लिए देहात छोड़कर नगरों, महानगरों में बसने लगे। इससे एक ओर तो अतीत की स्मृति की कचोट पर आधारित आंचलिक प्रवृत्ति आई तथा दूसरी ओर संयुक्त परिवार के टूटने की प्रक्रिया से नगरों, महानगरों के युवकों में एक प्रकार के अलगाव और अजनबीपन की भावना उभरी। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद जो आशाएँ-आकांक्षाएँ उभरी थीं, उनकी पूर्ति न होने से निराशा और मोहभंग का भाव भी दिखाई पड़ा। इसके विपरीत शिक्षा के प्रसार और आरक्षण की नीति से दलित-चेतना एवं नारी-चेतना का उभार दिखलाई पड़ने लगा। उधर भूमंडलीकरण और उत्तर आधुनिकता का दबाव भी किसी न किसी रूप में दिखलाई पड़ रहा है। यह दबाव चिंतन पर ज़्यादा है, साहित्य सर्जना पर कम। साहित्य-संस्कृति को व्यवसाय बनाने वाली शक्तियाँ अवश्य इस स्थिति से लाभ उठाने की ताक में है।

हिंदी साहित्य की सुदीर्घ परंपरा है। वह विशाल जनगण की आशाओं एवं आकांक्षाओं का जीवंत प्रमाण है और हिंदी भाषी जनता के सुख-दुख और निरंतर बेहतर लक्ष्य प्राप्ति के लिए संघर्षशील जनता के मनोजगत का रचनात्मक आलेख। हिंदी साहित्य अपनी मानवतावादी परंपरा का विकास करने की प्रक्रिया में आज भी संलग्न है।

प्रश्न-अभ्यास

आदि काल

1. आदि काल के नामकरण और कालावधि पर प्रकाश डालिए।
2. आदि काल के प्रमुख पाँच कवियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. आदि कालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
4. आदि काल को वीरगाथा काल क्यों कहा गया? वीरगाथात्मक साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।
5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए –
   सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य, जैन साहित्य, वैष्णव काव्य
6. 'अ' वर्ग में दिए गए रचनाकारों की रचनाएँ 'ब' वर्ग से छाँटिए –

अ	ब
1. नरपति नाल्ह	1. कीर्तिलता
2. जगनिक	2. विजयपाल रासो
3. नल्लसिंह	3. बीसलदेव रासो
4. विद्यापति	4. पृथ्वीराज रासो
5. चंदबरदाई	5. परमाल रासो

भक्ति काल

1. भक्ति आंदोलन की सामाजिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
2. भक्ति के प्रमुख संप्रदायों का परिचय दीजिए।
3. संतकाव्य को ज्ञानमार्गी भक्तिकाव्य क्यों कहा गया? इसकी प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए।
4. निर्गुण प्रेमाश्रयी काव्यधारा का आशय स्पष्ट करते हुए इसकी प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

5. सगुण भक्तिकाव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
6. निर्गुण भक्तिकाव्य एवं सगुण भक्तिकाव्य में अंतर स्पष्ट कीजिए।
7. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए –
   तुलसीदास, सूरदास, कबीर, जायसी, मीराबाई, रसखान, रहीम
8. रामभक्ति काव्य की प्रमुख विशेषताएँ बताते हुए दो प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
9. कृष्णभक्ति काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
10. भक्ति काल को हिंदी साहित्य का 'स्वर्ण युग' क्यों कहा जाता है?

रीति काल

1. रीति काल की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
2. 'रीति कालीन कविता का प्रधान स्वर शृंगार का है' – इस कथन की तर्कसम्मत पुष्टि करते हुए रीति कालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ बताइए।
3. रीतिबद्ध काव्यधारा का आशय स्पष्ट करते हुए प्रमुख दो कवियों का परिचय दीजिए।
4. रीतिबद्ध एवं रीतिमुक्त काव्यधारा का अंतर स्पष्ट कीजिए।
5. रीतिमुक्त काव्य का क्या आशय है? इसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ बताइए।
6. रीति काल में शृंगार के अतिरिक्त कौन-कौन सी प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं?
7. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए –
   रीतिसिद्ध काव्यधारा, घनानंद, मतिराम, भूषण

आधुनिक काल

1. खड़ी बोली गद्य के विकास की परंपरा का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. भारतेंदु युगीन साहित्य की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए इस युग के साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ बताइए।
3. द्विवेदी युग को भारतेंदु युगीन चेतना के विकास का युग क्यों कहा जाता है?
4. भारतेंदु युगीन कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ बताइए।
5. द्विवेदी युगीन गद्य की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
6. द्विवेदी युगीन कविता की प्रमुख विशेषताएँ स्पष्ट करते हुए दो प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
7. गांधी युग के साहित्य को यथार्थ और स्वप्न की अभिव्यक्ति कहना कहाँ तक उचित है? तर्कसम्मत उत्तर दीजिए।
8. प्रेमचद के समकालीन प्रमुख कथाकारों तथा उनकी प्रमुख कृतियों का परिचय दीजिए।

[redacted] कहा जाता है? छायावादी काव्य की प्रमुख

[redacted] आधार स्तंभों के नाम बताइए तथा उनका संक्षिप्त परिचय दीजिए।

11. प्रगतिवाद से क्या तात्पर्य है? प्रगतिवादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ स्पष्ट कीजिए।
12. प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का अंतर स्पष्ट कीजिए।
13. प्रयोगवादी काव्य की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
14. नई कविता की प्रमुख विशेषताओं का निरूपण कीजिए।
15. प्रमुख प्रगतिशील कवियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
16. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास की विकास यात्रा का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
17. 'नई कहानी' का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
18. 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानियों में शिक्षित और नौकरी प्राप्त नारियाँ भी कहानी का पात्र बनने लगी' – इस कथन की युक्तियुक्त समीक्षा कीजिए।
19. 'यदि गद्य कवियों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी' - इस कथन को ध्यान में रखते हुए हिंदी निबंध साहित्य की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
20. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए –
    रिपोर्ताज, रेखाचित्र, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत, जीवनी, पत्र-पत्रिकाएँ।